डॉ० रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

आँसू का अनुवाद

(720 दोहे)

दोहाकार

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

डी. लिट्

रीडर–शोध एवं स्नातकोत्तर–हिन्दी विभाग

एस0 आर0 के0 (पी0जी0) कॉलेज,

फीरोजाबाद (उ0 प्र0)–283203
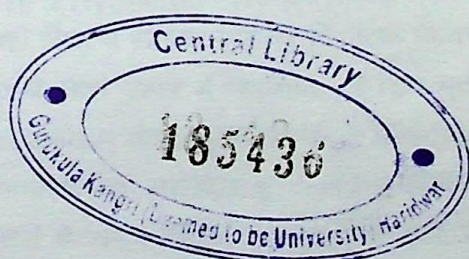
अनुसंधान

703 ए, न्यू मॉडल कॉलोनी, बरेली -243122

प्रकाशक
चेतन दुबे 'अनिल'
प्रबन्ध निदेशक
अनुसंधान
न्यू मॉडल कॉलोनी, बरेली–243122
दूरभाष–9410219930

प्रथम संस्करण
2008

मूल्य
80/–

शब्द संयोजन
ग्लेस कम्प्यूटर्स, इन्दिरा नगर, बरेली (उ0 प्र0)
दूरभाष – 0581–2310179, 9758401774, 9410087972

मुद्रक
हिन्द प्रिन्टर्स
बड़ा बाजार, बरेली (उ.प्र.)
Ph : 0581-3255025, 9319930140

ANSOON KA ANUVAAD
Written by : Dr. Ram Sanehi Lal Sharma 'Yayawar' Rs. 80/-

जिन्दगी को दुहते दोहे

– डॉ. बनवीर प्रसाद शर्मा
डी. लिट्.
रीडर, हिन्दी विभाग,
जवाहर लाल नेहरू (परास्नातक)
महाविद्यालय, एटा (उ० प्र०)

प्राध्यापकीय रचना कर्म को उद्दंड पूर्वाग्रह शौकिया शगल मानकर कमतर आँकता रहा है, किन्तु उसे लापरवाह बल्कि चुनौती मानकर डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' एक लम्बे अरसे से साहित्य रचना–कर्म में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते रहे हैं। उनकी साधना निरन्तर महासाधना की ओर अग्रसर होकर स्वयं को माँजती हुई अपने साहित्यकार को प्रमाणित करती रही है। उनके प्रकाशित तीन गीत संग्रह, तीन कविता संग्रह, दो समीक्षा ग्रन्थ, राष्ट्रीय स्तर की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्र, संस्मरण, कहानियाँ एवं अद्यतन साहित्यिक गति मानना इस सच का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

प्रस्तुत दोहा–संग्रह उनकी सातवीं काव्य कृति है। गीत; ग़ज़ल और कविता के रूप में 'यायावर' जी को जो रमणीक साधन मिला है। उनके समीक्षक ने उसे सही दिशा में रखकर निरन्तर विकसित किया है। जीवन और कविता के लम्बे साझे सफर में 'यायावर' ने जिन मुकामों पर पड़ाव लिया है। उनका अन्वेक्षण कर अनुभव सम्पदा बँटोरी है, लेखन के निरन्तर रियाज से सम्प्रेषण का असरदार हुनर हासिल किया है। जीवन के अन्धे कोने–अँतरों में 'नाइट विजन डिवायस यंत्र' (जो अँधेरे में छिपी हुई वस्तु को भी देख लेता है) की तरह झाँककर उनके सच को प्राप्त किया है। साहित्य की लम्बी और सघन साधना में प्रगतिशील विजन और सकारात्मक सोच अर्जित की है। उन सबका उपयोग लेखक ने इस कृति में किया है।

दोहा बड़ी कृशकाय तन्वंगी विधा है। उसके इकहरे बदन में प्रेम क्रीड़ाओं या ऐसे ही जीवन के उल्लास को तो आसानी से भरा जा सकता है, किन्तु उसमें जीवन की चुनौतियों, तल्खियों, आवेगों , संघर्षों से जूझने की गतियों और सामाजिक युद्ध लड़ने का ताव नहीं होता, किन्तु 'यायावर' जी ने इस भ्रम को क्रास करते हुए 'गागर में सागर' भरने के फन का इस्तेमाल कर इस असम्भव काम को बड़ा कारगर सर अंजाम दिया है।

इन दोहों का नेटवर्क परम्परागत विषयों–भक्ति, प्रीति, नीति, प्रकृति तक सीमित न रहकर एक व्यापक धरातल पर जीवन के अनुषंगों, सरोकारों से जुड़कर उसका भाष्य प्रस्तुत करता है। उनकी रचनात्मक परिणति गुणात्मकता के उस बिन्दु पर पहुँचती दिखाई देती है, जहाँ कवि कविता को पा लेता है। छन्द शास्त्र के अनुशासन में ढले हुए ये दोहे अपनी पारम्परिक विरासत की खूबियों, नए चरित्र, नए मिजाज, नई शैली, प्रौढ़ अभिव्यक्ति क्षमताओं, सधी हुई बेजोड़ कलाचातुरी मिजाज के साथ काव्य जगत् में नई भूमिका में उतरकर समकालीन कविता की बिरादरी में ताकतवर वजूद के साथ खड़े दिखाई देते हैं।

इन दोहों का चरित्र बहुआयामी है। मनोरम प्रकृति, बेबस अभावग्रस्त जिन्दगी, विडम्बक जनतंत्र, विषैली साम्प्रदायिकता, नेताओं, गुण्डों, पूँजीपतियों और तमाम भ्रष्टाचारियों की ट्यूनिंग और उससे हलाल होते जनता और औरतों के सपने, गाँवों शहरों में हो रहे नकारात्मक परिवर्तन और उससे उपजी सम्बन्धहीनता, मशीनी भौतिकवादी जीवन शैली, उससे जन्मी हताशा, कुण्ठा, संत्रास, अजनबीपन, उदासीनता और संवेदन शून्यता, भय, आतंक आदि कच्चा माल इन दोहों के ढालने में प्रयोग किया गया है, हाशिए के आदमी और मूल्यों पर जिन दबावों को कवि ने महसूस किया है। जीवन की भौतिक सुविधाओं को बल, साजिश और हथकण्डों से प्राप्त करने को उत्पन्न हुए तमाम दबाव समूहों के प्रभाव

में आमजन की यंत्रणाओं और काठ होती संवेदनाओं को रिसते हुए देखा है– ये सब परिदृश्य इन दोनों की संवेदना की परिधि में सिमटे हुए हैं। ये दोहे जिन्दगी के मार्मिक लम्हों और दृश्यों को ऑन लाइन स्क्रीन पर लेते हैं और उनसे ऑफ लाइन संवाद कर संवेदना को निचोड़ते हैं।

दोहों का उच्च बौद्धिक चरित्र जीवन के सरोकारों से जुड़कर उससे मुठभेड़ करता है। उसकी सघन पड़ताल करता हुआ उसके नकारात्मक मूल्यघाती पक्षों पर आक्रमण करता है। मूल्यों की हिफाजत के लिए बेचैन नजर आता है। निस्संदेह 'देखन में छोटे लगें' वाली यह विधा समकालीन कविता के पाये का आचरण करती हुई बींच के अन्तर को समेटकर रचनात्मकता के प्रखर उन्मेष से महामहिम हो उठी है।

विषय के मर्म को पहचानने और उस पहचान को रचने के रचनात्मक तनाव के दौरान 'यायावर' ऐसी भाषा और शैली की तलाश के लिए बेचैन दिखाई देते हैं जो इक्कीसवीं सदी की साइबर और डिजीटल जिन्दगी और उसकी खामियों को पकड़ने और उसे बयान करने में उनकी कला पटुता को मदद दे सके। इस आफत में सबसे बड़ा सहारा उनकी ग्रामीण पृष्ठभूमि बनती है। वहाँ के संस्कार, वहाँ का मानसिक भण्डार और भुक्तभोगी अनुभवों की पूँजी की सम्पन्नता से वे अपनी जरूरत को सहज ही पूरा कर लेते हैं। जहाँ भी उस पूँजी का रचनात्मक सन्निवेश उन्होंने अपने दोहों में किया है उसके संवेदी सूचकांक का ग्राफ अपने उच्चतम शिखर को छू लेता है। तब ये दोहे अपने रिज्यूम में विशेष योग्यता का उल्लेख करते हैं।

दोहा हिन्दी की बड़ी प्राचीन विधा रही है, बिहारी और रहीमदास ने केवल इनके बल पर तत्कालीन कविता से होड़ लेकर हिन्दी साहित्य में अपना प्रतिष्ठित उच्च स्थान सुनिश्चित किया है। इसी प्रकार 'यायावर' जी के ये दोहे समकालीन कविता को सीधी टक्कर देकर साहित्य की कॉलोनी में रहने के लिए स्थान पाने की जद्दोजहद कर रहे हैं।

'यायावर' जी जब दोहों के परम्परागत विषयों – भक्ति, प्रकृति आदि विषयों में हस्तक्षेप करते हैं तो उसकी संवेदना को ताजा बनाकर उसकी भूमिका को सामाजिक सक्रियता से जोड़ देते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की शब्दावली में कहें तो उसे प्रत्यग्र मनोहर बनाकर प्रस्तुत करते हैं जो अपनी ताजगी से मन का हरण कर लेता है। इसी क्रम में **"धूप किशोरी हो गई, सरसों भई जवान। बढ़ती बिटिया लखि निशा, भूलि गई औसान।"** जैसे प्रयोगों में कवि की वैचारिक प्रखरता, अभिव्यक्ति पटुता और कविता की सुघड़ता का परिचय मिलता है। एक ओर इसमें प्रकृति के रोमांटिक मानवीकरण का सुख मिलता है तो दूसरी ओर अर्थाभाव में विवश जवान होती हुई बेटी के विवाह की चिन्ता की माँ की पीड़ा रिसती हुई दिखाई देती है। एक ही दोहे में सुख–दुख की अभिव्यक्ति लेखकीय प्रौढ़ता, पटुता और विदग्धता को पुष्ट करती है। इसी प्रकार **"मेरा मन चलकर गया, बाल दिवस के पास। पथ पर ढाबे पर मिला, सपना एक उदास।"** उक्ति के आधे हिस्से में राजकीय बाल कल्याण योजनाओं के खोखलेपन और आधे हिस्से में उसके बरअक्श बच्चों के शोषण और बालश्रम पर अपनी संवेदना को केन्द्रित किया गया है।

'पेट–पीठ दोनों मिलकर हैं एक' वाली काया और हाथ में लकुटिया लिए भिखारी तथा भर बँधे यौवन वाली पत्थर तोड़ती हुई युवती को तो निराला जी ने भर आँख देखा था, किन्तु होटलों, ढाबों, घरों, हलवाइयों और मिस्त्रियों के यहाँ मेहनत करते, पिटते बाल मजूरों पर साहित्यकारों ने अपनी संवेदना को कम ही फोकस किया है, किन्तु इन दोहों ने होटलों पर काम करने वाले मजूर छोटुओं की भूख, बेबसी, लाचारी और यातनाओं को नम आँखें फाड़ कर देखा है। **"जूठी प्लेटें, नग्नतन, थप्पड़, घूँसा, लात, भोले बचपन को यहीं, दी हमने सौगात।"**

दोहों में गहरे, सघन और व्यापक अर्थ भरने का काम कवि ने शब्दों से लिया है। वर्ग भेद की लम्बी परम्परा को व्यक्त करती हुई इस उक्ति **''कहीं सिसकती भूख है, कहीं धधकती प्यास''**। में हीन वर्ग की भूख की पूरी कारण स्थितियाँ और धधकती प्यास में उच्च वर्ग का धनाराधन, अर्थ लिप्सा, उसे हासिल करने की वैध, अवैध, हिंसा और शोषण परक युक्तियों और हरकतों के अर्थ एक–एक कर खुलने लगते हैं। 'बसंत वर्णन' में कही गई उक्ति **''आँख–आँख गढ़ने लगीं, विद्यापति के छन्द''** में विद्यापति के छन्द पूरे रोमांटिक परिवेश को खड़ा करते हैं और आँख–आँख गढ़ने लगीं शब्दावली प्रेम के चटुल व्यापार और प्रेम पसीजी मुद्राओं को साकार करती है।

''ह्रदय सूखने लग गए, बड़ी कठिन अनवृष्टि'' में सम्बन्धहीनता, उदासीनता और ठंडेपन के परिवेश को खड़ा किया गया है। सम्बन्धों की यह अनवृष्टि गाँव की सरहद में भी उत्पात कर रही है– **''पनघट अब प्यासे खड़े, सूने पड़े अलाव। चौपालों को लग गया, कचहरियों का चाव।''**, **''बगलों में छुरियाँ दबी, अधरों पर मुस्कान।''** गाँव, शहरों के बदले सम्बन्धों के आचरण के इस छद्म रूप से शत्रु–मित्र की पहचान खो रही है। सम्बन्धों की यह सच्चाई इस बिन्दु पर आदमी को मथने लगती है–**''मेरे मरने पर किया, प्रकट जिन्होंने खेद। उनके चाकू से मरा, खुला न अब तक भेद।''** सम्बन्धहीनता का यह दौर–दौरा भय, आतंक, यातना और ज्यादतियों को सहने को बाध्य कर उन्हें काठ बना देता है– **''चीलें मँडराने लगीं, खोल पंख और पाँव। तब आया यह समझ में, यह मुर्दों का गाँव।''** इसी प्रकार शातिर मौसम, मक्कार हवा, बदहवास फसलें, काँपते खेत–जवार, उदास फसलें, सहमी पगडंडियाँ, हाँफते चकरोड, जोगन आशाएँ, उदास पगडंडी और सपने, गुमसुम खेत, प्यासे पनघट आदि में प्रयुक्त विशेषण भाषा को जीवन्त, ऊर्जस, अभिव्यक्ति क्षम और

असरदार बनाकर दोहों में अर्थ को सघनता से भरने, अभिप्रेत को विस्तार में फैलाने का काम करते हैं।

इन दोहों का विषय क्षेत्र जितना फैला हुआ है, अभिव्यक्ति पंथ उतना ही गठा हुआ है। इनकी अर्थ साधना इतनी बेजोड़ है कि एक–एक शब्द में अर्थ इस प्रकार भरा हुआ है जिस प्रकार धुनका रुई धुन–धुन कर रजाई में भरता है, इनके अर्थ विस्तार को नापते हुए अपार बौद्धिक तृप्ति मिलती है, जरसी गाय के छोटे से थन से जिस तरह भर बाल्टी दूध काढ़ लेते हैं, उसी प्रकार इन छोटे दोहों से जिन्दगी के अर्थों को दुहा जा सकता है। रोजमर्रा के शब्दों में ऐसा अर्थ भरा होता है कि एक–एक शब्द में व्यक्ति, उसके पूरे परिवेश और तंत्र के समूचे परिदृश्य, आचरण, गतियाँ, स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, युग यथार्थ अपनी क्रियाशीलता में नजर आने लगते हैं। अर्थच्छटाओं, अर्थ दीप्तियों और व्यापक अर्थ भूमियों की यह सामर्थ्य दोहों के व्यक्तित्व में एक नया अध्याय जोड़ती है। इन दोहों को पढ़कर मेरी चेतना की सतह पर एक जिमनास्टिक करती हुई तरुणी की देहयष्टि तैरती है जो चन्द पलों में अपने देह सौष्ठव और कला निपुणता का परिचय दे देती है।

ये दोहे कहीं चित्त को मथते हैं, कहीं ठंडी संवेदना को ताप देकर उत्तेजित करते हैं। कहीं वैचारिक प्रखरता का उनसे रिसाव होता है, कहीं विदग्धता चटुल मुद्रा में कविता धार देती है। कहीं अर्थ भंगिमा, उत्ताल नृत्य करती दिखाई देती है, तो कहीं छन्द के अनुशासन में भय और झिझक भी।

समग्रतः समकालीन कविता के समूचे इतिहास में यह दोहा–संग्रह डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' की गौरवपूर्ण उपलब्धि के रूप में गिना जाएगा और उनके रचनात्मक व्यक्तित्व के यश विस्तार में एक नवीन अध्याय जोड़ेगा तथा अध्येताओं को गम्भीर, स्तरीय प्रतिक्रियाओं के लिए भी उकसाएगा। ❐

जिन्दगी के समानान्तर एक और जिन्दगी

– **डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'**

जिन्दगी अपने होने का पूरा मूल्य वसूलती है। साँस–साँस जिन्दगी का ऋण चुकाने में खर्च हो रही है। हम सब प्रश्नों के दहकते मरुस्थल में खड़े हैं। हमारे समय की विडम्बना है कि हम अपने युग के हर शुभ–सत्य को सन्दर्भहीन देखने को अभिशप्त हैं। विडम्बना यह भी है कि मूल्य टूट ही नहीं रहे; उनकी आवश्यकता को भी एक सिरे से नकार दिया गया है। 'सत्य' प्रताड़ित हो रहा है और असत्य अपनी दानवी हुंकार में अपने युगसत्य होने की घोषणा कर रहा है। सच कहूँ तो मुझे लगता है कि यह समय 'मूल्यहन्ता' भी है और 'हृदयहन्ता' भी। पूरे युग पर 'दैहिकता' और 'मासलता' इस कदर हावी है कि 'इन्द्रियातीत' संवेदन अब 'व्यंग्य' का आलम्बन बनते हैं। बाजार हमारे घर आँगन, द्वार, पूजागृह, तुलसी चौरा, खेत, मेड़, खलिहान, ड्राइंगरूम, शयन कक्ष और रसोईघर में ही नहीं हमारे चिन्तन, मनन, संवेदन और मन प्राण में भी घुसकर बैठ गया है। कभी कुछ चीजें ऐसी हुआ करती थीं, जिनके ऊपर अघोषित रूप से 'नॉट फॉर सेल' लिखा रहता था, जैसे–नारी की लज्जा, कुलवधू का सतीत्व, पुरुष की बात, कवि की कलम, माँ का वात्सल्य, बच्चों की उजली हँसी आदि। परन्तु अब ये सब न केवल बाजार में बिक रही हैं, अपितु इनके अपने–अपने स्वामी ही इन्हें लेकर नीलामघर में खड़े हैं और मनमाफिक बोली लगते ही इन्हें बेच दे रहे हैं। संस्कृति, सभ्यता, शालीनता, आभिजात्य और गरिमा जैसे शब्दों के अर्थ बदल रहे हैं और एक नई अर्थ भंगिमा वाली शब्दावली जन्म ले रही है, जिसका जन्म उच्च मानवीय मूल्यों और रिश्तों की ईमानदार संवेदनशीलता की कोख से नहीं, अपितु 'यूज़ एण्ड थ्रो' जैसी उपयोगितावादी युग–निष्ठा से हुआ है।

हमारा युग बौनों का युग है। महानायकों और महान आदर्शों से रहित इस युग में सब कुछ छोटा और बौना है। आदमी के हाथ बौने हैं

और इच्छाओं का आकाश निरन्तर व्यापक से व्यापकतर और विस्तृत से विस्तृततर होता जा रहा है। ऐसे समय सर्जकों में महाकाव्य या खण्डकाव्य तो छोड़ें, सही ढंग से गीत या ग़ज़ल लिखने की तौफीक भी नहीं बची है। ऐसे में साहित्य का आकाश लघुकाय विधाओं ने आच्छादित कर लिया है। कथासाहित्य में लघुकथा और काव्य में हाइकू, चतुष्पदी, दोहा, जनक, सुगति और क्षणिका जैसी विधाओं की तूती बोल रही है। इनमें दोहा अपनी भाषाई समास शक्ति, अनुभूति की तीक्ष्णता, अन्त्यानुप्रासिकता से उत्पन्न नाद-सौन्दर्य, लचीली प्रकृति और व्यंग्य धर्मिता को पचाने की अभूतपूर्व क्षमता के कारण आज का सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द बन गया है। यह छन्द अब अपने नाम को सार्थक करता हुआ सहृदयों के चित्त को दुह रहा है।

दोहा साहित्य का वामनावतार है। उसके प्राणों में संवेदना की तरलता बहती है और शरीर में उक्ति वैचित्र्य रक्त बनकर बहता है। कभी वह अन्धी भारतीय अस्मिता के 'मत चूके चौहान' का मंत्र देकर निर्देशित कर रहा था और कभी किसी तुलसी के रामनामी इकतारे पर भक्ति का आलाप ले रहा था। कभी उसने कबीर की खंजड़ी पर सत्य का स्वर-संधान किया और कभी रहीम की वाणी में नीति का मंत्र पाठ। परन्तु आज वह आधुनिक जीवन की विसंगितयों, मूल्य विघटन, अनास्था, कूट संवेदनहीनता, रिश्तों के मध्य आई स्वार्थपरता, मनुष्य में पनपे निर्मम जंगलतंत्र, हँसती हुई उदासी और रोते हुए मंगल मंत्र की विडम्बना, सांस्कृतिक प्रदूषण, शहर की सर्वग्रासी भूख, गाँव की पगडण्डी की उदासी, मुखिया के बेटे की अफलातूनी प्रकृति, कटते हरियाले वृक्षों की कराह, राजनीति की विद्रूपता, खोई हुई मानवता और हुंकारती दानवता को अपने कलेवर में समेट रहा है।

मेरे दोहे मेरे दर्द की दास्तान हैं। उस दर्द की जो हम सब के जीवन में परिव्याप्त है, उस दर्द की जो हम सब सहने को अभिशप्त हैं। उस दर्द की जिसे हमारे आँसुओं में ढलकर बह रहा है, जो हमारे-हम सबके आस-पास बिखरा है। रचनाधर्मी के नाते मैं देख रहा हूँ कि मेरी फकीरी पुकार कोई सुन नहीं रहा। मेरी टेर शून्य से टकराकर मेरे ही कानों में लौट-लौट आ रही है और उसे सुनकर सोने के रथ पर चढ़ा

हुआ कुबेर व्यंग्य की हँसी हँस रहा है। मैं कंक्रीट के जंगल–महानगर में खोई हुई मानवीय मुस्कान ढूँढ रहा हूँ और मुझे अपने शहर में एक मुस्कराहट की दुकान खोलने की जरूरत महसूस हो रही है। मेरा मन बाल–दिवस की औपचारिकताओं में 'बौड़म' बना खड़ा है और बालकों के सपने ढाबों, चाय की दुकानों, मकानों और दुकानों में गरियाती मेजों की टाँग बने भटक रहे हैं। तब मुझे मेरी व्यथित पुकार उस सर्वान्तर्यामी से पूछती है–"विधना! तुमने क्यों लिखी, मानव की तकदीर। कुछ के हिस्से प्यास है, कुछ के हिस्से नीर।"

मैं खुली आँखों नियति का यह घिनौना खेल देख रहा हूँ– "बंजर में बरसे जलद, जलता सागर नीर।" और तब मेरी व्यथा पूछती है–"जन्म–जन्म की प्यास को, बोए कहाँ कबीर?" मुझे लगता है आज आम आदमी उस पगडण्डी की तरह हो गया है जिसे सबके पैर रौंदते हैं। इच्छाओं का हर कारवाँ अपने घर जाते हुए उस पगडण्डी की देह को ही कुचलकर जाता है। उत्तर आधुनिकता के इस युग में मनुष्य का मन पत्थर हो गया है, भावनाएँ पथरा गई हैं और जीवन यांत्रिकता के नागपाश में जकड़ गया है। आदमी सुबह उदासी खा रहा है और शाम को ऊब।

इस सबके बीच बसन्त आता है। इन्द्रियाँ झाँझ बजाने लगती हैं, मन मृदंग हो जाता है, कोई गन्ध–संयम का अन्तर छलने लगती है और बौराया मन स्वकीया–परकीया का अन्तर भूलकर वृन्दावन की रासभूमि में भटकने लगता है। महाकाव्य–सी दोपहर ग़ज़ल सरीखी प्रात, मुक्तक जैसी शाम और खण्ड काव्य–सी रात लेकर ग्रीष्म आती है। तम को सेनापति और मच्छर–झींगुर को भृत्य बनाकर पावस आता है। धरती को चाँदनी की धवलिमा में आकण्ठ स्नान कराता शरद आता है। प्रीति की झाँझ बजाती हेमन्ती साँझ आती है और धूप को श्वेत खरगोश बनाती शिशिर आती है। ऋतु–चक्र चलता रहता है। लगता है प्रकृति हमें प्यार से सराबोर कर रही है। प्यार जिसके पारस स्पर्श में तन–मन को कंचन बनाने की क्षमता है। प्रकृति के इसी मोहक परिवेश में मेरा मन चकित होता हुआ सोचता है कि–

"छूकर पारस प्रीति का, तन–मन कंचन होय।

जाने क्यों किसने कहा, 'प्रीति न करियो कोय'।।''

प्रकृति के वरदान अपनी जगह और जिन्दगी को दर्द के साँचे में ढालते मानव के दुष्प्रयास अपनी जगह। हरियाली काटकर बोए हुए धुँए से आँखें तो कड़ुआएँगी ही। सो हम सब उस कड़वाहट को झेल रहे हैं और कोई उपाय भी तो नहीं। इन समूची दुर्दान्तता के बीच ही दोहा अपनी सार्थकता तलाशता है। तब लगता है कि–

''मन के दफ्तर में रहा, सदा दर्द आबाद।
हम बैठे करते रहे, आँसू का अनुवाद।।''

अस्तु, यह दोहा संग्रह आपके हाथों में हैं। ह्दय से कृतज्ञ हूँ अपने अभिन्न ह्दय बन्धु और प्रखर समीक्षक डॉ0 बनवीर प्रसाद शर्मा – डी.लिट् का जिन्होंने परकाया प्रवेश करके मेरी अनुभूतियों को अपने अन्तस्तल में महसूस कर इन दोहों की वैदुष्यपूर्ण रचनात्मक समीक्षा की है। डॉ0 शर्मा समीक्षा को रचनाकर्म बनाने का हुनर जानते हैं। मेरा परिवार कल्पवृक्ष है। पत्नी श्रीमती शकुन्तला शर्मा का गृह–संचालन का कौशल, पुत्र डॉ0 कुमार किंजल्क भारद्वाज और पुत्रवधू सीमा भारद्वाज की मेरी सर्वतोभावेन हित चिन्ता, पुत्रियों और जामाताओं की स्नेहपूर्ण आग्रहशीलता मेरे रचनाधर्म का सम्बल है। यह सब इतने ममतालु न होते तो मेरा रचनाकार कब का मर चुका होता। आभार प्रकट करता हूँ भाई चेतन दुबे 'अनिल' का जिन्होंने इतनी कुशलता और तत्परता से इस संग्रह का प्रकाशन किया है।

आपकी प्रतिक्रयाएँ मेरा मार्गदर्शन करेंगीं।

इत्यलम्।

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'
डी.लिट्.
286–तिलकनगर, बाईपास रोड,
फीरोजाबाद–283203
मो–9219412159, 9412316779

मकर संक्रान्ति (सं0 2064 वि.)
14 जनवरी 2008

समर्पण

हिन्दी नवगीत के शीर्ष पुरुष

एवं

नव दोहा के प्रतिमान

श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'

को सादर

अनुक्रमणिका

वाणी-वन्दन

1. यह निर्वासन आत्म का, कुण्ठाएँ संत्रास।
   कृपा करो माँ शारदे! दो चिन्मय उल्लास।।

2. अट्टहास करता कलुष, गरजे तम घनघोर।
   अन्दर–बाहर शान्ति दो, बन्द करो कलरौर।।

3. प्राणों में दो ज्योति यह, मन हो निर्मल पूत।
   कलुषासुर से लड़ सकें, माँ! दो शक्ति अकूत।।

4. पग–पग जनहित में उठे, मन भावों से सींच।
   बैठ कल्पना–हंस पर, उतरो उर के बीच।।

5. उच्छृंखल होवे नहीं, तट पर बैठा काम।
प्राण–सरित के बाँध दो, माँ! यों घाट ललाम।।

6. ऊर्जस्वित हों प्राण–मन, हृदय, बुद्धि, निष्काम।
हे वरदायिनि! दो हमें, यह वर ललित–ललाम।।

7. कबिरा की वाणी मिले, तुलसी का विश्वास।
मीरा वाली पीर हो, दो माँ यह आश्वास।।

8. मन का महिषासुर करे, नित्य नए पाखण्ड।
बन दुर्गा हन शारदा! मेरा अहं प्रचण्ड।।

9. ज्ञान–खडग, खप्पर–क्षमा, नाहर मम अस्तित्व।
तू काली बन शारदा, मार दानवी तत्व।।

10. हृदय सूखने लग गए, बड़ी कठिन अनवृष्टि।
सरस बीन के स्वर उठा, डाल दया की दृष्टि।।

11. वीणावादिनि! सो गए, उर–वीणा के तार।
निज उँगली से छेड़ कर, जगा मधुर झंकार।।

यायावर

1. चढ़ने को दुर्गम शिखर, पढ़ने को ब्रह्माण्ड।
मन–'यायावर' हाथ में, तन मिट्टी का भाण्ड।।

2. मरुथल, बीहड़ अगम पथ, मिली न कोई छाँव।
'यायावर' पग पूछते, कहाँ तुम्हारा गाँव।।

3. नट हम, नाटक सृष्टि यह, अखिल विश्व है मंच।
'यायावर' साँसें सदा, झेलें यहीं प्रपंच।।

4. गाम, नाम, घर छोड़कर, पहुँचा है इस ठाँव।
'यायावर' तेरे लिए, कैसा पथ? क्या गाँव।।

5. रचो अल्पना री सखी, बाँधो वन्दनवार।
'यायावर' यादें लिए, पथिक खड़ा है द्वार।।

6. गिद्ध उड़ानें भर रहे, उल्लू करें पुकार।
चल 'यायावर' गाँव में, मुर्दों का त्योहार।।

7. शोकगीत गाओ सखे, या नाचो सोत्साह।
'यायावर' तो चल दिया, पकड़ी अपनी राह।।

8. आशाएँ जोगिन हुईं, चाहें चढ़ीं सलीब।
सपने 'यायावर' हुए, अपना यही नसीब।।

9. धूप उमर की हाँफती, खिली चाँदनी रात।
'यायावर' मौसम करे, कनवतियों में बात।।

10. कब आओगे प्राण में, धरे मनोहर भेख।
दृग–'यायावर' युगों से, रहे पंथ को देख।।

11. सरिता का तट सघन है, पीपल, बरगद, आम।
'यायावर' मन बस यहीं, कर लो चिर विश्राम।।

महानगर

12. है अभाव महँगी बिके, अधरों की मुस्कान।
चलो! शहर में खोल लें, चलकर एक दुकान।।

13. बाबा की खाँसी गई, अम्मा वाला राज।
हँसी, ठिठोली ननद की, औ भाभी की लाज।।

14. बँधुआ हुए मशीन के, कैसे रहें प्रसन्न।
तन–मन पत्थर हो गए, प्राण हुए अवसन्न।।

15. पीपल, बरगद, आम से, टूट गया सम्बन्ध।
हमने कैक्टस से किया, अब प्रगाढ़ अनुबन्ध।।

16. तन–मन–चिन्तन, बुद्धि–बल, घर आँगन परिवार।
महानगर में हो गए सबके लघु आकार।।

17. आल्हा, ढोला, लोरकी, फगुआ, गीत, मल्हार।
कौन सुने? गाये कहाँ? उलझन लगीं हजार।।

18. घूँघट, मेंहदी, कण्ठ स्वर, करुणा, मोह, उछाह।
महानगर में बिक गए, दर्द, प्रेम और चाह।।

19. खेत, गैल, खलिहान, वन, उपवन और सहेट।
निगल गया सबको, यहाँ महानगर का पेट।।

20. पनघट अब प्यासे खड़े, सूने पड़े अलाव।
चौपालों को लग गया, कचहरियों का चाव।।

21. बगलों में छुरियाँ दबी, अधरों पर मुस्कान।
'यायावर' कैसे करे, शत्रु–मित्र–पहचान।।

22. पगडण्डी के वक्ष पर, चढ़ी कोक की राख।
चौपाली गरिमा गई, गई घाट की साख।।

23. आँगन छोटे हो गए, चौड़े घर के द्वार।
देवर हाँसी ना करे, लगे न ननद छिनार।।

सलीब और हम

24. बोतल खाली हो गई, जूठे जाम तमाम।
लोग फुसफुसा कर कहें, कुछ गुरुओं के नाम।।

25. संतापों की झील में, डूबा अपना गाँव।
खुसरो अब कैसे चलें, लेकर जख्मी पाँव।।

26. काफी में डूबी सुबह, थकी थकी–सी शाम।
भूल गए हम शहर में, आकर अपना नाम।।

27. मेरे मरने पर किया, प्रकट जिन्होंने खेद।
उनके चाकू से मरा, खुला न अब तक भेद।।

28. थैली बाएँ हाथ थी, दाएँ में तलवार।
वह खरीदकर ले गया, मुझे सरे बाजार।।

29. उनके हिस्से में दवा, अपने हिस्से रोग।
अपना–अपना भाग्य है, अपना– अपना भोग।।

30. बित्ता–बित्ता कट रहे, हम साँसों के साथ।
सपनों वाली तेग है, कुछ अपनों के हाथ।।

31. कविता ने हमसे कहा, कब तक लिखूँ प्रलाप।
ढोते-ढोते थक गई, मैं तो तेरे पाप।।

32. क्या जानें कब टूटकर, टुकड़े चुभें हजार।
अपने चारों ओर है, शीशे की मीनार।।

33. यहाँ देखते-देखते, सब कुछ लुटता हाय।
तू भी तो असहाय है, मैं भी हूँ निरुपाय।।

34. हमने अपनी उँगलियाँ, की काँटों को दान।
जब फूलों ने कर दिया, उनको लहूलुहान।।

35. भूख, गरीबी, बेबसी, दुर्दिन और दुर्भाग्य।
पंचरत्न हमको मिले, अपना अपना भाग्य।।

युग सन्दर्भ

36. डरकर कोटर में छुपे, कुछ पंछी बेनाम।
जब बन्दूकों ने लिखा, लोकतंत्र का नाम।।

37. मुल्ला-पंडित, पादरी, पीर, सयाने लोग।
ये कैसे बाँटें दवा, बाँट रहे जो रोग।।

38. अन्तर-अन्तर में घुटन, दर्द भिगोए प्रान।
मस्तक में होली जले, आँखें रेगिस्तान।।

39. तृष्णा-तृष्णा की रटन, कुण्ठा-कुण्ठा घोख।
अमरबेल-सी प्यास ने, लिया समूचा सोख।।

40. मिली जिन्दगी के लिए, इतनी-सी सौगात।
वित्ता भर की चाँदनी, कोसों लम्बी रात।।

41. अन्तर–अन्तर दर्द है, प्राण–प्राण में पीर।
आँख–आँख मरुथल हुई, मन–मन आज अधीर।।

42. रक्त सने, नख–दन्त ले, घूम रहे हैं व्याध।
जो तन अर्पित कर रहे, उनका भी अपराध।।

43. या तो चीलें उड़ रहीं, या मँडराते बाज।
प्राण बचाने को कहाँ? जाय कबूतर आज।।

44. यहाँ चाँदनी जल रही, वहाँ सिसकती छाँव।
यह तुलसी का देश है, वह खुसरो का गाँव।।

45. बाहर जाएँ किस तरह, खोलें घर के द्वार।
लिए संटिया हाथ में, हवा खड़ी तैयार।।

यथार्थ के दंश

46. कुछ खत, छायाचित्र कुछ, इत्र सने रूमाल।
गालिब के घर का नहीं, यह मोमिन का माल।।

47. चीलें मँडराने लगीं, खोल पंख और पाँव।
तब आया यह समझ में, यह मुर्दों का गाँव।।

48. जाने कब उठ जाएगा, डेरा–डण्डा द्वार।
मिट्‌टी वाला घर जहाँ, साँसों का त्योहार।।

49. कलियाँ काँटों से करें, अब विवाह–सम्बन्ध।
तलवारों ने तोप से, किया यही अनुबन्ध।।

50. प्रेम, त्याग, बन्धुत्व, प्रण, गए मधुरता भूल।
फटी जेब थी, खो गए, अपने सभी उसूल।।

51. कहीं सिसकती भूख है, कहीं धधकती प्यास।
कबिरा तेरे देश का, इतना ही इतिहास।।

52. कुछ पैरों को भूमि तक, मिली न अपने पास।
किसी-किसी को दे दिया, क्यों पूरा आकाश।।

53. जूठी प्लेटें, नग्न तन, थप्पड़, घूँसा-लात।
भोले बचपन को यहीं, दीं हमने सौगात।।

54. किया सदी में दोस्तो, हमने यह इन्कलाब।
भूख लगी, खाया मनुज, प्यास-पिया तेजाब।।

पाती हिन्दी ने लिखी

55. हिन्दी पाकर हो गए, बापू युग के बुद्ध।
जीत लिया इसको उठा, स्वतंत्रता का युद्ध।।

56. हिन्दी में हँसता मिला, रिश्तों का संसार।
यह माँ की लोरी तरल, यहीं पिता का प्यार।।

57. तुम स्वतंत्र, परतंत्र मैं, आँचल रही भिगोय।
पाती हिन्दी ने लिखी, आँसू कलम डुबोय।।

58. हिन्दी की बिन्दी नहीं, बनी भाल-आधार।
भारत माता का अभी, है अपूर्ण श्रृंगार।।

59. शब्दों का तन बाँधती, अर्थों की जंजीर।
ज्यों की त्यों रखकर गया, चादर सन्त कबीर।।

60. प्राणों में बिजली भरें, जगनिक के जयगान।
अमराई में गूँजते, विद्यापति के गान।।

61. मंजिल सबकी एक है, भिन्न–भिन्न हैं पन्थ।
मानस, बीजक, उर्वशी, सूर, सिन्धु गुरु ग्रन्थ।।

62. आए इसके द्वार जब, ओज माँगने प्रान।
हँस कर हिन्दी ने कहा, "मत चूके चौहान"।।

63. 'चन्द्रगुप्त' गाता मिला, 'जय भारत' हर बार।
'हल्दी घाटी' में उठी, रणचण्डी हुंकार।।

64. देश घिरा आपत्ति में, जन बल हुआ बिहाल।
हिन्दी ने बढ़कर लिया, तब दायित्व सँभाल।।

65. हिन्दी में गाता मिला, साधों का इतिहास।
पनघट की उजली हँसी, राखी का उल्लास।।

हिन्दी सबकी एक

66. राम नाम रस पी गया, तुलसी सहित सनेह।
पी गुविन्द रस वारुणी, मीरा हुई विदेह।।

67. सब का सुख सबकी हँसी, कहती सबकी पीर।
ग्रन्थी, पण्डित, मौलवी, राजा, रंक, फकीर।।

68. इसके बेटों ने दिया, इसे गहन सन्ताप।
जाने किसका लग गया, इस हिन्दी को शाप।।

69. उत्तर से दक्षिण जुड़ा, नहीं रहा अब द्वैत।
दसो दिशाएँ राष्ट्र की, हिन्दी से अद्वैत।।

70. मिले 'निराला' रस उसे, जो करता संवाद।
मुक्त हस्त से बाँटती, हिन्दी दिव्य 'प्रसाद'।।

71. जो बोला सो ही लिखा, लिखा सो बोला जाय।
संस्कृत की यह लाड़ली, बाँटे सुधा अघाय।।

72. 'कामिल बुल्के', 'ग्रियर्सन', 'बारान्निकोब' अनन्य।
हिन्दी का वात्सल्य पा, हुए विदेशी धन्य।।

73. यह हिन्दी का राजपथ, चले वृद्ध आबाल।
उठा, स्वर्ग उसको मिला, चला सो हुआ निहाल।।

74. रंग, रूप, रुचि भिन्न है, शोभा परम महान।
सौरभ का संसार यह, हिन्दी का उद्यान।।

75. सम्प्रदाय पथ भिन्न हैं, जाति व धर्म अनेक।
ईश्वर सबका एक है, हिन्दी सबकी एक।।

76. यह प्राणों की आरती, साँसों का उल्लास।
हिन्दी में ही पूर्ण है, भारत का इतिहास।।

बसन्त

77. ज्ञान, ध्यान, संयम भला, कैसे रहें स्वतंत्र।
जब फागुन पढ़ने लगा, सम्मोहन के मंत्र।।

78. पुरवा पछियाँ ले गई, है थक कर वनवास।
अब दखिना का राज है, मत हो सखी उदास।।

79. फूलों के चेहरे खिले, बदला मधुकर-वेश।
'कल आएंगे' आ गया, प्रियतम का सन्देश।।

80. मोह, वासना, कामना, का हो कैसे अन्त।
गाँव-गली घूमे खुला, यह उन्मत्त बसन्त।।

81. भाव, प्राण–रस, मुग्ध–मन, इच्छा–शिशु के ढोल।
फागुन तेरे कोष में, कितने रतन अमोल।।

82. यह उन्मादक चाँदनी, यह मलया का राज।
कौन स्वकीया–परकीया पोथी बाँचे आज।।

83. अँजुरी–अँजुरी में कमल, हवा–हवा में गन्ध।
आँख–आँख अब तोड़तीं, मर्यादा के बन्ध।।

84. आशा की कलियाँ जलीं, प्राणों का बस अन्त।
प्रियतम तेरे देश में, शायद जला बसन्त।।

85. साँसों में मधुवन खिला, प्राण उठे फिर नाँच।
मन के हिरना ने भरी, इतनी मधुर कुलाँच।।

86. पर्ण–पर्ण रसमुग्ध है, हवा–हवा में गन्ध।
पखुरी–पखुरी नाँचकर, तोड़ रहीं प्रतिबन्ध।।

87. इस धरती–आकाश में, कहीं न अपनी खैर।
नाच रहे छम छमाछम, अप्सरियों के पैर।।

88. आली! वृन्दावन चलें, जहाँ बसे रसराज।
पीछे–पीछे आएगा, बौराया ऋतुराज।।

89. गुपचुप–गुपचुप हो गई, रति–अनंग में सन्धि।
दिशा–दिशा में रहस है, पग–पग पर अभिसन्धि।।

90. कष्ट, क्लेश, कुण्ठा, दमन, जड़ता का बस अन्त।
रस–लोभी लम्पट ललित, अगजा हुआ तुरन्त।।

91. धरती का उल्लास यह, फूट पड़ा अम्लान।
पुष्पवती दुहिता हुई, सरसों सरस सुजान।।

92. नजरें खिड़की पर गढ़ीं, बिगड़ी सबकी चाल।
छज्जे पर बैठी किरन, खोले गीले बाल।।

93. संयम का अन्तर छलै, क्वाँरी गन्ध उमंग।
मन के गुरुकुल का हुआ, यों अनुशासन भंग।।

94. धूप किशोरी हो गई, सरसों हुई जवान।
बढ़ती बिटिया लखि निशा, भूलि गई औसान।।

95. प्राण मंजरी से खिले, रँग–रँग चढ़ा बसन्त।
तन वृन्दावन हो गया, अजहूँ न आए कन्त।।

96. मौसम ने पाती लिखी, तेरे–मेरे नाम।
आओ मधुवन को चलें, या वृन्दावन धाम।।

97. श्रुतिपट के बागी हुए, अब भँवरों के गान।
प्रणय–पत्र लिखती पवन, छोड़ मानिनी! मान।।

98. मौसम में केसर घुली, हवा भर रहीं तान।
तोतों की चोंचें मिलीं, छोड़ मानिनी! मान।।

99. छुअन, कम्प, मधु गन्ध ले, बौराया मधुमास।
फूल उठा मन्दार वन, जग अनंग का दास।।

100. तन की सिहरन भागती, घनी अलक की छाँव।
मन कहता चल बावरे, भुजपाशों के गाँव।।

101. साँसें वृन्दावन हुई, लख फागुन के रंग।
तन मोहन की बाँसुरी, मन राधा के संग।।

102. सररर अचरा उड़ि चल्यौ, झररर बरसै रंग।
अररर यह कैसी भई, जे फागुन के ढंग।।

103. फागुन लाया द्वार पर, सपनों की बारात।
जानें क्या तुमने कहा, पिघला पूरा गात।।

ग्रीष्म

104. महाकाव्य–सी दोपहर, ग़ज़ल सरीखी प्रात।
मुक्तक जैसी शाम है, खण्ड काव्य–सी रात।।

105. आँधी, धूल, उदासियाँ, और हाँफता स्वेद।
धूप खोलने लग गई, हर छाया का भेद।।

106. धूप संटियाँ मारती, भर आँखों में आग।
सहमा मुरझाया खड़ा, आमों का वह बाग।।

107. सूखे सरिता, ताल सब, उड़ती जलती धूल।
सूखे वंशीवट लगें, उजड़े–उजड़े कूल।।

108. तपै दुपहरी सास–सी, सुबह बहू–सी मौन।
शाम ननद–सी चुलबुली, गरम जेठ की पौन।।

109. छाया थर–थर काँपती, देख धूप का रोष।
क्रुद्ध सूर्य ने कर दिया, उधर युद्ध उद्घोष।।

110. जीभ निकाले हाँफता, कूकर–सी मध्याह्न।
निष्क्रिय अल्साया पड़ा, अजगर–सा अपराह्न।।

111. सिर्फ जँवासा ही खड़ा, खेतों में हरषाय।
जैसे कोई माफिया, नेता बन इतराय।।

112. लू के थप्पड़ मारती, दरवाजे पर पौन।
ऐसे में घर से भला, बाहर निकले कौन।।

113. धूप और लू मिल यहाँ, जला रहे सब गात।
राजनीति और गुण्डई का जैसे उत्पात।।

114. ताल–तलैया, पोखरे, सूखा सरिता पंक।
डिक्टेटर बन ग्रीष्म ने, फैलाया आतंक।।

115. धूल, बवण्डर, आँधियाँ, धूप, ताप निःशंक।
रति की शह पा ग्रीष्म ने, फैलाया आतंक।।

116. नजर उतारी सास ने, ले पितरों के नाम।
नई बहुरिया माँगती, दिन भर खट्टे आम।।

पावस

117. बदरा! जा घर आपने, यहाँ न फेरा मार।
गाँव न अब कोई करै, तीजन के त्योहार।।

118. मेंहदी भई अँगार ज्यों, सेज चिता बनि जाय।
सावन बनि ज्वालामुखी, तन–मन सब दहकाय।।

119. सूने घर आँगन भए, सूने पौरि–दुआर।
सूनी अँखियाँ थकि चलीं, पिय को पन्थ निहार।।

120. जा चातक घर आपने, गहि री कोयल मौन।
पावस प्रीतम बिन सुनै, तान तुम्हारी कौन।।

121. बजमारे बदरा करें, बूँद–तीर की मार।
इनपे परै न बीजुरी, नाहिन परैं अँगार।।

122. सावन आवन की कहाँ, प्रीतम गये भुलाय।
या तो अनहोनी भई, या लिए सौति लुभाय।।

123. हरियल वन उपवन भये, हरियल भूमि सुहाय।
हरियल अब अँगना भयो, पियरानौ तन हाय।।

124. घन घमंड गरजें घने, बाँधि विरहिणी केश।
पावस सब परदेशिया, आवें अपने देश।।

125. छीन–क्षुद्र बादल रहे, तेज, ओज औ राज।
अपने ही घर में अतिथि, सूरज लगता आज।।

126. प्रियतम नीरद आ गया, भर नयनों में प्यार।
वीर वधूटी सज उठीं, कर सोलह श्रृंगार।।

127. चाँद गया हड़ताल पर, तम हो गया विशाल।
जुगनू ने बढ़कर लिया, अब दायित्व सँभाल।।

128. तीतर, पाँखी, बादरा, मोरपंखिया भोर।
काकपंखिया दिन हुआ, बरसे घन घनघोर।।

129. छैनी–सी पैनी लगे, झींगुर की झंकार।
तम–पर्वत को काटती, झन–झन बजते तार।।

130. प्रकृति–वधू के वक्ष पर, अंकुर–शिशु का हास।
लता, वृक्ष, केकी हँसें, बुझी धरा की प्यास।।

131. डाँट रही चपला मगर, रह–रह जाते ऊब।
जिद्दी शिशु जैसे जलद, करें शरारत खूब।।

132. तम सेनापति हो गया, झींगुर मच्छर भृता।
पावस नृप के राज्य में, जुगनू हुआ अगता।।

133. बरस झमाझम जलद ने, भरी धरा की देह।
सर–सरिता पूरित हुए, ऐसा बरसा मेह।।

134. सावन आकर चल दिया, वीर न आया पास।
कौन बुझाए बहन की, इन अखियन की प्यास।।

135. बादल भैया! थम जरा, जाना प्रिय के देश।
लेता जा उस निठुर को, बिरहिन का सन्देश।।

136. सावन भादों बरस कर, हरें हृदय का चैन।
ज्यों–ज्यों टपके झोंपड़ी, त्यों–त्यों टपकें नैन।।

137. घटा घिरी गहरी घनी, बढ़ी तमस की शान।
रात–दिवस की कौन अब, करै यहाँ पहचान।।

138. ताप–कंस शोषक हुआ, सूख चला ब्रजधाम।
आओ तारनहार बन, भादों के घनश्याम।।

139. वन, उपवन, अमराइयाँ, लता, वृक्ष, वट, आम।
सबको हरियाली लिए, आए हैं घनश्याम।।

140. आए हैं घनश्याम घिर, जन–जन हुआ निःशंक।
अत्याचारी ग्रीष्म का, मिटा कठिन आतंक।।

शरद

141. चाँद, चाँदनी, धूप, तन, मन में मधुर उजास।
सबको निर्मल कर गई, उज्ज्वल शरद सहास।।

142. चाँदी जैसी रात में, तन-मन है निष्पाप।
चन्दन गन्धी दिन हुए, जीवन के सब पाप।।

143. शाम सुहानी हो गई, गन्ध भिगोए प्रात।
गाली ज्यों ससुराल की, प्रिय लगते दिन-रात।।

144. कल तक अपनी बाढ़ में, डुबा रही थी कूल।
प्रौढ़ बनी नदियाँ, पहन, शालीनता-दुकूल।।

145. आँधी, लू , झंझा नहीं, नहीं शीत का कोप।
समदर्शी शासक-शरद, करे विषमता लोप।।

146. विष्णु शरद, श्री चाँदनी, दम्पति सुख सरसाइ।
सृष्टि क्षीरसागर बनी, पूनम सरस सुहाइ।।

147. मन उज्ज्वल, तन हो गया, शीतल पावन सेत।
नवरातों का व्रत करे, धूप सूर्य के हेत।।

148. विजड़ित वातावरण है, धरा-गगन चुपचाप।
हलवाहा जब भोर में, ले बिरहा-आलाप।।

149. चन्द्र कलश लेकर निशा, रही धरा पर ढाल।
जगी सृष्टि पाकर सुधा, कण-कण हुआ निहाल।।

150. यमुना तट से बाँसुरी, टेर रही है आज।
शरद पूर्णिमा, चल सखी! रचें रास का साज।।

151. यमुना कूल, कदम्ब तरु, ब्रज वनिता ब्रजराज।
शरद पूर्णिमा-चाँदनी, नाचे सकल समाज।।

152. पथहारे को पथ मिला, विरहिन को प्रिय संग।
सूर्य किरन दिन को मिली, खिले शरद के रंग।।

हेमन्त

153. वर्षा, आँधी, धूप, रवि, किरण, धरा गुणवन्त।
सबको शीतल कर रहा, यहाँ सन्त हेमन्त।।

154. शरद शीत से मित्रता, कर होता सुखवन्त।
सबको सौंपे सौम्यता, सौम्य सन्त हेमन्त।।

155. तृन-तृन, कन-कन खेत-वन, हिमजल उठे नहाय।
प्रिय आगम लखि रैन ज्यों, मोती रही लुटाय।।

156. जलक्रीड़ा कैसे करे, करि-सर में निःशंक।
जल छूते ही सूँड़ को, लगे शीत का डंक।।

157. बुला रही जाने किसे, बजा प्रीति की झाँझ।
पर्वत पर चुपके खड़ी, यह हेमन्ती साँझ।।

158. मफलर बाँधे ओस का, खड़े हुए हैं आम।
शान्त भाव से रट रहे, शीत-भूप का नाम।।

159. क्वारी कन्या-सी लगे, उजला-उजला रूप।
तन-मन पावन कर रही, यह हेमन्ती धूप।।

160. इस अगहन में लग रही, मानो धरा विवस्त्र।
हरण किया हेमन्त ने, हरियाली का वस्त्र।।

161. ताप तप्त था शरद तक, अब लगता है दीन।
लिया प्रबल हेमन्त ने, दर्प सूर्य का छीन।।

162. पुष्पवती लख लता को, भ्रमर करे गुंजार।
यौवन–धन को लूटने, आया है बटमार।।

163. दुर्दिन हों तो मित्र भी, पल में बदलें रंग।
सूख गया है कमल वन, छोड़ गया अलि संग।।

शिशिर

164. छूते मैली हो रही, ऐसा उजला रूप।
फुदक श्वेत खरगोश–सी, रही चंचला धूप।।

165. मुख विवर्ण तन श्लथ लिए, आती मेरे गाँव।
लगे शिशिर की धूप के, हो गए भारी पाँव।।

166. मूर्छित जब होने लगा, हरियाली का हर्ष।
कोरामिन ले ताप का, चली धूप की नर्स।।

167. शीत उड़ाने लग गया, सूरज का उपहास।
सिकुड़ गया तन ठिठुर कर, फैला मन का व्यास।।

168. शिशिर आ गया ले यहाँ, ठिठुरन की सौगात।
मूँगफली और चाय के, फिर बहुरे दिन–रात।।

169. रजनी में करने लगा, शीत घने उत्पात।
सूरज करता धूप से, कनवतियों में बात।।

170. ठिठुरन, सिहरन कम्प और, विकट शीत का डंक।
अत्याचारी शिशिर ने, फैलाया आतंक।।

171. लुप्त प्रखरता हो गई, दिखता बढ़न मलीन।
शिशिर–महाजन ले गया, सूरज का धन छीन।।

172. भय कंपित पीड़ित हुआ, काँपे पूरा गाँव।
सबको मारा शिशिर ने, है जूड़ो का दाँव।।

173. जाम सुराही भय नहीं, साथी नहीं करीब।
करे शिशिर आनन्दमय, कैसे भला गरीब।।

174. कुहरे से डर छोड़कर,जाय न अपना राज।
पाती सूरज को लिखें, हम–तुम मिलकर आज।।

पर्यावरण-प्रदूषण

175. मिट जाएगा विश्व से, जीवन का आधार।
अगर कुल्हाड़ी वृक्ष पर, करती रही प्रहार।।

176. धरती माँ के वक्ष पर, लिखें हँसी के गीत।
जल चर, नभ चर, विपिन चर, सब मानव के मीत।।

177. सरिता ने हमको दिया, पावन, शीतल आब।
पर हमने सौंपा उसे, जहरीला तेजाब।।

178. हरियाली को काट जब, नंगे किए पहाड़।
मौत अनुज के द्वार पर,बैठी खूँटा गाड़।।

179. अपसंस्कृति दे तरुण को, देकर ऊब किशोर।
हम नव शिशु के कान को, सौंपे जलता शोर।।

180. बर्बादी हँसने लगी, रोने लगा विकास।
जल, ध्वनि, पवन विनाश का, जब गूँजा कटु हास।।

181. वृक्ष धरा के पुत्र हैं, उन पर किया प्रहार।
उस दिन मानव ने लिखा, अपना उपसंहार।।

182. जीव धरा पर जो बने, मानव के प्रिय मीत।
कुछ को मारा कर दिया, कुछ को अति भयभीत।।

183. पारिजात, नन्दन विपिन, कल्पवृक्ष का हास।
मिटा दिया यूँ ही यहीं, देव तत्व–विश्वास।।

184. विपिन, वृक्ष, पर्वत, धरा, जल, नभ, संस्कृति–रूप।
सबको देकर यातना, करता मनुज कुरूप।।

185. जब अशोक नव मल्लिका, नीलोत्पल औ' आम।
कमल रहेंगे देश में, तभी रहेगा काम।।

186. कटे आम, अमरूद सब, सूख गये अंजीर।
नदियों में बहने लगा, अब तेजाबी नीर।।

187. पीपल, बरगद, नीम को, काट किया पामाल।
गमले में रख कैक्टस, रुचि से रहे सँभाल।।

188. तेजाबी मख में किया, तूने हमें हविष्य।
मछली बोली रे मनुज, तेरा यही भविष्य।।

189. पर्वत नंगे कर दिए, उपवन किए उजाड़।
मधुवन, निधिवन में खड़े, सिर्फ झाड़ झंखाड़।।

190. धुआँ, उगलतीं चिमनियाँ, कान फोड़ता शोर।
आम कटे, अब किस जगह, बैठें नाचें मोर।।

191. सूखे वंशीवट कदम्ब, उजड़े-उजड़े कूल।
यमुना में उड़ने लगी, अब तो सूखी धूल।।

192. गंदा गंगा को किया, यमुना को बदरंग।
हालत सरयू की लखी, राम रह गए दंग।।

193. सर, सरिता, सागर, कुएँ, जल से होंगे हीन।
मानव यदि करता रहा, यों ही तेरह तीन।।

194. कटे विपिन सर्वत्र अब, बिखरे टूटे काँच।
कस्तूरी मृग अब कहाँ, जाकर भरे कुलाँच।।

195. मानवता में मिल गए, दानवता के तत्व।
हुई प्रदूषित सभ्यता, खतरे में अस्तित्व।।

196. आँखें कड़ुआने लगीं, बहरे होते कान।
अब संकट में पड़ गए, इस धरती के प्रान।।

बाल श्रमिक

197. आगे चलें बरात के, ले हण्डों का भार।
इनका बचपन भी इन्हें, लौटाओ अब यार।।

198. या तो आँसू पी रहे, या पीते हैं आग।
बच्चों के इस देश में, फूटे ऐसे भाग।।

199. भोले बचपन को न दो, कभी हथौड़ा भूल।
आँसू डूबी पलक पर, धरो हँसी के फूल।।

200. ले आँसू की पालकी, ये चलते हैं रोज।
ले आओ थोड़ी हँसी, अब इनको भी खोज।।

201. मौसम के कारण हुए, इतने बूढ़े पेड़।
धूप उम्र की कर गयीं, बच्चे सभी अधेड़।।

202. भूख खा रहे पी रहे, ये अपनी ही प्यास।
भोलीं साँसें ढो रहीं, जीवन के संत्रास।।

203. चिथड़े पहने काम पर, जाने को तैयार।
देर न कर ओ धीरुआ, पड़ जाएगी मार।

204. कलम एक वरदान है, यह भट्टी अभिशाप।
पापा! भट्टी में हमें, नहीं जलाओ आप।।

205. प्लास्टिक, लोहा, काँच या, पत्थर लेकर हाथ।
गढ़े खिलौने बालपन, खेलें बूढ़े साथ।।

206. खेलकूद चंचल हँसी, गुल्ली-डण्डा प्यार।
बच्चे भूले देश के, परियों का संसार।।

बाल हिंसा

207. हाय विधाता! बालकों, का यह बिगड़ा माथ।
कुछ के चाकू पेट में, कुछ के चाकू हाथ।।

208. धार देख ली तेल की, क्या देखेंगे तेल।
भोला बचपन खेलता, 'मरो', 'मरो' का खेल।।

209. चाकू, कट्टा, गोलियाँ, हाकी, डण्डा मार।
हाथ दुध मुँहे छापते, खून सना अखबार।।

210. दूध-कटोरा से जुड़े, ये कैसे सम्बन्ध।
पलनाघर से आ रही, है बारूदी गन्ध।।

211. खुद को ही खाने लगे, ऐसा बढ़ा जुनून।
नौनिहाल पढ़ने लगे, हिंसा का कानून।।

212. दबी भार से चल रहीं, झुक बचपन की दीठ।
कुछ चाकू , कुछ फाबड़े, कुछ बस्ते ले पीठ।।

213. लाल रक्त से रँग गई, पैरों तले जमींन।
घर के दीपक से जला, इस घर का कालीन।।

214. मेले में हमको मिले, कुछ बच्चे होश्यार।
बचपन बेच खरीदते, ये चाकू की धार।।

215. क्रोध सखा इनका बना, भाई हुआ जुनून।
बच्चे अब रखने लगे, ठेंगे पर कानून।।

216. मिले हमें अभिमन्यु कुछ, थे अनेक प्रत्यूह।
बोले आए सीख हम, रचना चक्रव्यूह।।

217. दूध–बताशा छोड़कर, उड़ती हुई पतंग।
बालक अब उड़ने लगे, ले चाकू का संग।।

आत्मालाप

218. तुम आए तो आ गई, सुधियों की बारात।
स्वप्न पालकी पर चढ़े, क्षण–क्षण है मधुरात।।

219. सदियाँ बीतीं हेरते, तुम्हें उठा कर बाँह।
सुधियों की बंशी बजे, मन–कदम्ब की छाँह।।

220. तुम अब तक आए नहीं, खुले न अपने भाग।
जाने कब से बोलता, छज्जे बैठा काग।।

221. रसवन्ती होने लगी, आज हवा की गन्ध।
याद प्रवासी ने किया, शायद फिर अनुबन्ध।।

222. अब महावर हँसने लगा, मेंहदी हुई सहास।
अंग-अंग पर रच गया, वृन्दावन का रास।।

223. साँसों में सन्ताप है, है प्राणों में पीर।
बिना तुम्हारी भावना, अब हो गई फकीर।।

224. साँसें डूबीं, हो चले, देखो प्राण अचेत।
फड़क-फड़क शुभ अंग अब, देते क्या संकेत।।

225. सरिता के तट पर सघन, जहाँ खड़े थे आम।
प्राणों के पाषाण पर, लिखा किसी ने नाम।।

226. आँसू डूबी पलक पर, अधरों की सौगात।
शायद तुम भूले मुझे, लगता कल की बात।।

227. लाभ-हानि जोड़ा करे, व्यापारी संसार।
'इदम् न मम' कह कर हुआ, तन-मन का व्यापार।।

228. तुम आए थे ले यहाँ, सपनों की बारात।
चले गए फिर छोड़कर, पीड़ा की सौगात।।

229. सुख-सरिता में डूबकर, भूला अपना आप।
सम्मोहन के गाँव जब, तुमसे हुआ मिलाप।।

हम-तुम

230. हम-तुम सिर्फ पतंग हैं, नभ का ओर न छोर।
चलो समय के हाथ में, सौंपें अपनी डोर।।

231. सिन्धु लहरियों पर लिखे, मृदु प्रभात का हाथ।
कल्प–कल्प तक के लिए, तेरा–मेरा साथ।।

232. उन्नत हिमगिरि–वन वही, घाटी वहीं ललाम।
मनु–श्रद्धा बन हम यहीं, घूमे थे अविराम।।

233. तुम सीता की वेदना, लेकर खोई प्राण।
मैं वन–वन ढूँढू तुम्हें, मिले नयन को त्राण।।

234. तेरे प्राणों में मिला, राधा का वह दान।
मुझ में मुरलीधर न था, लेता जो पहचान।।

235. मान किए बैठी अभी, तेरे मन की प्रीत।
प्रेम नगर में राधिके, कोई हार न जीत।।

236. क्यों जाओगी छोड़कर, मन की राधा बोल।
पाया है मैंने तुम्हें, इन प्राणों के मोल।।

237. जानें किसके शाप का, हम–तुम हैं इतिहास।
सरिता के उस पार तुम, हम इस पार उदास।।

238. कभी छले रावण कभी, छले मधुपुरी गाँव।
हमसे कितने दिन नियति, खेलेगी यह दाँव।।

239. तुम सुगन्ध, मैं सुमन हूँ, युग–युग रहे अभिन्न।
सृष्टि पूर्व सम्बन्ध यह, अब तक हुआ न छिन्न।।

240. तुम कादम्बरि सजल हो, मैं मरुथल की प्यास।
तपन अधर पर हृदय में, तृप्ति भरा विश्वास।।

जिन्दगी

241. हम सरिता के तट खड़े, लिए पीठ पर भार।
हँसते–हँसते जिन्दगी, निकल गई उस पार।।

242. जीवन–नद हम--तुम बहे, धारा के अनुकूल।
जाने किसके हाथ की, पूजा के दो फूल।।

243. तन वृन्दावन में बहे, मन–जमुना की धार।
तू मोहन की बाँसुरी, मैं राधा का प्यार।।

244. आँख मिलाकर प्रीति कर, मत हो सखे उदास।
हँसकर बोली जिन्दगी, आकर मेरे पास।।

245. मिलकर बिछुड़े, फिर मिले, टूट–जुड़े सौ बार।
एक जिन्दगी को दिए, विधि ने दर्द हजार।।

246. इस तट हँसती जिन्दगी, उस तट पर है मीच।
कर्म–नदी कल–कल बहे, दो कूलों के बीच।।

247. सरयू का जल बन कभी, कभी व्याध का बाण।
मौत जिन्दगी से सदा, रही छीनती प्राण।।

248. तुम साँसों में बस गईं, बन बंशी अभिराम।
तन वृन्दावन हो गया, पागल मन घनश्याम।।

249. यह विक्रम–सी जिन्दगी, इतनी हुई हताश।
भटके कन्धों पर लिए, हम अपनी ही लाश।।

250. प्रश्नों के कुरुक्षेत्र में, अर्जुन–सी उद्भ्रान्त।
कृष्ण मौन हैं इसलिए, यह जिन्दगी अशान्त।।

251. तू चाहे तो चल पड़े, चाहे करें विराम।
हमने कहा कि जिन्दगीं! तेरे हाथ लगाम।।

प्रेम

252. छूकर पारस प्रीति का, तन–मन कंचन होय।
जाने क्यों किसने कहा, 'प्रीति न करियो कोय'।।

253. जो अनजाने, प्रीति से, वे पहचाने जाँय।
क्यों कह दिया कबीर ने, 'खाला का घर नाँय।।

254. तीन लोक, चौदह भुवन, जल–थल, अम्बर माँहि।
तन छूटे पर जीव की, प्रीति बिना गति नाँहि।।

255. तन–मन, जीवन प्राण, धन, साँस–साँस बिक जाय।
सब कुछ बेचे मोल बिन, प्रेम न हाट बिकाय।।

256. तन हो चन्दन–पाँखुरी, मन फूलों का सार।
कैसे कहें कि प्रीति है, कठिन खडग की धार।।

257. करे भाग्य की वक्र लिपि, जीवन की गति मन्द।
अति सूधो नहि प्रेम को, मारग घन आनन्द।।

258. छवि के सागर में कभी, मन डूबे उतराय।
कभी नयन की डगर पर, पथहारा जो जाय।।

259. कभी जगत् की विधि छले, कभी भाल के अंक।
जिसने की है प्रीति वह, कब रह सका नि–शंक।।

260. यहाँ तृप्ति भी है तृषा, तृषा तृप्ति का भास।
कौन बुझा पाया सखे! कहो प्रीति की प्यास।।

261. चाहों का उपवन यहाँ, कल्पवृक्ष की छाँव।
ललचाते हैं देवता, देख प्रीति का गाँव।।

262. दर्द दिया, आँसू दिए, दिया दुखों का दान।
सब दे विधि ने मनुज को, दिया प्रेम–वरदान।।

बेटी

263. तू साँसों की आरती, भावों का वरदान।
बेटी! तेरे रूप में, मिले हमें भगवान।।

264. नौबत बजी न घर सजा, हुआ न मंत्रोच्चार।
फिर भी घर नन्दन हुआ, जब तू आई द्वार।।

265. नेह–नदी बनकर बही, बिटिया अँगना बीच।
जब–जब सूखा उर दिया, तभी नेह से सींच।।

266. रहती दे आनन्द–सुख, चलती प्राण निकाल।
बेटी बिन माता–पिता, ज्यों मणि छीने व्याल।।

267. आँसू में डूबी पलक, दर्द भिगोए प्रान।
बेटी की घर में रही, इतनी ही पहचान।।

268. रहे धरोहर की तरह, बेटी घर के माँह।
प्राण जलाकर धूप में, देती शीतल छाँह।।

269. भारमुक्त हँसता हृदय, होकर भी अवसन्न।
बेटी को करके विदा, माता–पिता प्रसन्न।।

270. करुण कथा बेटी नहीं, है ज्वलन्त इतिहास।
संकल्पों की संहिता, लिखे समय का व्यास।।

271. नभ, जल, धरणी नापकर, बेटी हुई किशोर।
पाँव बढ़ाकर चल पड़ी, अन्तरिक्ष की ओर।।

272. पैरों में तूफान है, हाथों में संकल्प।
बेटी बढ़ नभ को छुओ, छोड़ो सभी विकल्प।।

273. तुम हो विधि की लेखनी, देव–नदी का नीर।
तम का पर्वत बेधती, बन प्रकाश का तीर।।

274. राम, कृष्ण, ईसा, ऋषभ, बुद्ध और महावीर।
बेटी तेरे ही ऋणी सन्त, महन्त, फकीर।।

प्यास

275. प्यासी हिरनीं, गहन वन, सिर पर जलती घाम।
भटके मेरी विकलता, कब तक मेरे राम।।

276. तपते हैं रवि, शशि, नखत, धरा, गगन, परिमाण।
अपनी–अपनी प्यास से, सबके व्याकुल प्राण।।

277. भीतर कस्तूरी रही, वन–वन भटके पाँव।
मन–हिरना को आज तक, मिली न कोई छाँव।।

278. सरिता ने कण–कण दिया, अपना नीर सहास।
किन्तु न बुझ पाई कभी, तृषित सिन्धु की प्यास।।

279. जन्म–जन्म से प्रीति को, मिला न कभी विराम।
रेती पर लिखती रही, प्यास हमारा नाम।।

280. खोई–खोई–सी खड़ी, तन–मन हुआ उदास।
जब से पनघट पी गया, इस गागर की प्यास।।

281. अगन सिन्धु जलते हुए, मरुथल का दस्तूर।
दोनों के भीतर दिखी, हमें प्यास भरपूर।।

282. कागज पर ढलती रहीं, बूँद–बूँद मन पीर।
पर 'अतृप्ति' ही लिख सकी, कवि की प्यास अधीर।।

283. विधना! तुमने क्यों लिखी, मानव की तकदीर।
कुछ के हिस्से प्यास है, कुछ के हिस्से नीर।।

284. बंजर में बरसे जलद, जलता सागर–नीर।
जन्म–जन्म की प्यास को, बोए कहाँ कबीर?

285. मंजिल मिली न उम्र को, चली हजारों मील।
यहाँ अतृप्त समुद्र था, वहाँ प्यास की झील।।

जन्म-जन्म की वेदना

286. सदियों के सत्कर्म की, तुम प्रतिमा साकार।
जन्म–जन्म की वेदना, जन्म–जन्म का प्यार।।

287. मुझसे–तुमसे नियति ने, खेला कैसा दाव।
जीत ले गई सुख सभी, देकर दुख का घाव।।

288. किस मथुरा में जान से, मन के राजकुमार।
प्रीति–राधिका आज तक, खड़ी खोल कर द्वार।।

289. गंगा बन आओ प्रिये! प्राण–भगीरथ पास।
मन–मरुथल में तप रही, सगर–सुतों की प्यास।।

290. मिलने दिया न आज तक, भाग्य हमारा नीच।
कुछ सदियों का फासला, तेरे मेरे बीच।।

291. जीवन–पुस्तक में जुड़े, जितने पृष्ठ ललाम।
पंक्ति–पंक्ति पर था लिखा, सिर्फ तुम्हारा नाम।।

292. सागर–रेखा लिख रही, बालू पर अविराम।
या तो सरिता का लिखे, या फिर तट का नाम।।

293. साक्षी जल तो बह गया, पंक रही तट पास।
लिखती सरिता–नीर पर, अपने हास बिलास।।

294. जन्म गए, सदियाँ गईं, रहे सदा गुमनाम।
भोजपत्र मन पर लिखा, अमिट तुम्हारा नाम।।

295. हंस–हंसिनी रच रहे, सरिता–तट पर रास।
मैं एकाकी देखता, यह सूना आकाश।।

296. दन्त पंक्ति मुकता विमल, अधर प्रवाल समान।
धनी रहा पाकर तुम्हें, अब हूँ रंक समान।।

नदी

297. महानगर करने लगा, पनघट का उपहास।
मेरा गाँव अपंग है, मन की नदी उदास।।

298. दुर्गम पर्वत श्रृंग हों, या चट्टानी तंत्र।
सरिता गाती ही रही, सतत प्रगति का मंत्र।।

299. चट्टानी पथ गहन वन, लहर–लहर इतिहास।
गतिमय सरिता को मिली, बस रेतीली प्यास।।

300. सरिता के जल ने छुए, जब से इसके प्राण।
शिव शंकर बन पुज रहा, तब से यह पाषाण।।

301. जीवन–सरिता बह रही, नदी नाव का योग।
इस तट पर संजोग है, उस तट खड़ा वियोग।।

302. जाने कब से सुन रहा, होकर परम अधीर।
जानें किसकी बाँसुरी, मन सरिता के तीर।।

303. चाह–दीप बहते मिले, कुछ पूजा के फूल।
सुधियों का तीरथ बसे, मन–सरिता के कूल।।

304. प्रेमपत्र लिखती रहीं, नदीं सिन्धु के नाम।
किन्तु न सागर दे सका, उसे सुहानी शाम।।

305. तन–मन–तट भींगे हुई, साँसें विगत विकार।
प्राण–हिमालय से बही, नेह–नदी की धार।।

306. तट–मर्यादा में रही, ले जीवन संभूत।
कूल तोड़ कर बन गई, नदी मृत्यु का दूत।।

307. कहाँ गया तेरा हृदय, बोली नदी उदास।
सस्मित सागर ने कहा, पगली तेरे पास।।

प्रतीक्षा

308. थके नयन, आशा थकी, गई निराशा जीत।
बिकल प्रतीक्षा ने कहा, अब तो आओ मीत।।

309. तुमने ही समझा नहीं, तब समझेगा कौन।
सरिता के तट पर खड़ी, एक प्रतीक्षा मौन।।

310. जाने कब, किस मोड़ पर, तुमसे भेंटें प्रान।
भूल गए उस रोज से, हम अपनी पहचान।।

311. महामिलन की चाँदनी, बहे बसन्ती पौन।
तुमको विस्मृति दे गई, मुझे प्रतीक्षा मौन।।

312. खीर प्रतीक्षा की लिए, जीवन–बट की छाँह।
प्रीति–सुजाता टेरती, तुम्हें उठाकर बाँह।।

313. सदियाँ बीती, युग गए, हुआ नहीं संयोग।
खड़ी प्रतीक्षा आज तक, लेकर विकल वियोग।।

314. जीवन–यात्रा का रहा, बस इतना परिणाम।
एक प्रतीक्षा ने लिखा, तेरा–मेरा नाम।।

315. जीवन–नौका चढ़ चले, धारा के अनुकूल।
किन्तु प्रतीक्षा–सिन्धु में, डूबे मन–मस्तूल।।

316. हम–तुम रहते थे वहाँ, जहाँ प्रीति की छाँव।
प्रबल प्रतीक्षा की नदी, डुबा गई वह गाँव।।

317. इस पीपल की डालियाँ, रहीं बहुत बेचैन।
चकवा चकवी के लिए, रोया सारी रैन।।

318. गहन निराशा का तिमिर, कर न सका आघात।
क्योंकि प्रतीक्षा का दिया, जलता था दिन रात।।

फागुन

319. मुझे, तुम्हें, इनको, उन्हें, सबको घर–घर खोज।
नेह–निमंत्रण बाँटता, फिरता फागुन रोज।।

320. फागुन लेकर आ गया, है छैनी का साज।
उर–पाषाणों में जगी, एक अजन्ता आज।।

321. पहन मंजरी का मुकुट, पल्लव का परिधान।
फागुन की बारात को, सजे आम्र–श्रीमान।।

322. इस फागुन की हाट में, ठगे जाएँगे प्रान।
ठौर–ठौर सजने लगीं, सौरभ की दूकान।।

323. छुअनें पल्लव हो गई, अब फागुन के देश।
देह बाँचने लग गई, मधुवन के सन्देश।।

324. कोयल बोली बावले, क्यों हो रहा उदास।
फिर फागुन की चिट्ठियाँ, लाई तेरे पास।।

325. पिचकारी हो बाँस की, हों हुलास के रंग।
मन का शिशु फिर चाहता, खेले फागुन संग।।

326. खोली मन की डायरी, सुधियाँ जगीं अनाम।
पृष्ठ–पृष्ठ पर लिख गया, फागुन तेरा नाम।।

327. पंख सुनहरी हो गए, फैल गया है व्यास।
लगा नापने उर–विहग, सुधियों का आकाश।।

328. चाह–राधिका–सी सजी, रूप हुआ घनश्याम।
फागुन में होने लगा, मन वृन्दावन धाम।।

329. ज्ञानी, ध्यानी, संयमी, जोगी, जती, प्रवीन।
फागुन के दरबार में, सब कौड़ी के तीन।।

सपने

330. चैन गया, सुख ने लिया, जीवन से संन्यास।
जब से सपने में मिले, सपने कई उदास।।

331. जन्म दिवस पर तुम मुझे, दो बस यह सौगात।
सपने तेरी आँख के, कर लें मुझसे बात।।

332. कैसी आई भोर यह, तेरे–मेरे द्वार।
जागे तन पर सो गया, सपनों का संसार।।

333. सुख की नींद न छू सकी, इन नयनों की कोर।
कानों में बजता रहा, कुछ सपनों का शोर।।

334. चले गए तुम छोड़कर, प्राणों का विश्वास।
हम हैं, सपने हैं, मगर, मन है बहुत उदास।।

335. जानें किसने लिख दिया, माथे पर संत्रास।
सम्बन्धों के गाँव में, सपने मिले उदास।।

336. मेरा मन चलकर गया, बाल दिवस के पास।
पथ में ढाबे पर मिला, सपना एक उदास।।

337. अखबारों की सुर्खियाँ, करतीं हैं ऐलान।
भूखे सपने खा गए, मानव का ईमान।।

338. प्राणों में बजने लगा, किलकारी का शोर।
जब सपने छत पर चढ़े, ले पतंग औ' डोर।।

339. कंचन–कंचन हो गई, इस सपने की देह।
जब से इसने छू लिया, तेरा पारस नेह।।

340. जंगल में बिखरे मिले, सपनों के कंकाल।
टुकड़े–टुकड़े कर गया, मौसम का भूचाल।।

341. पीड़ा–पर्वत से दबे, माँगे यम का पाश।
यौवन में विधवा बने, सपने दिखे हताश।।

342. प्राण जगमगाते रहे, सूखी तम की झील।
पथ पर आलोकित रहीं, सपनों की कन्दील।।

चाँदनी

343. कहीं चन्द्रमा दीखता, गन्धलोक में चूर।
कहीं चाँदनी ने लिखा, भूख, दर्द भरपूर।।

344. राधा, माधव, चाँदनी, महारास सम्भार।
मैं तब बालू–तट रहा, तुम यमुना की धार।।

345. रतिनयने! कन्दर्भ ने, जाने कब अभिराम।
इसी चाँदनी पर लिखा, तेरा–मेरा नाम।।

346. राधा बोली देख कर, पूनम का श्रृंगार।
फल चन्दन की चाँदनी, आज हुई अंगार।।

347. मन–आँगन में चाँदनी, गाती जब कलगान।
उतरे ले छवि मोहिनी, तब–तब सुधि का यान।।

348. चोवा, चन्दन, चाँदनी, चाँद, चपलता, हास।
केवल उनके पास है, जो कंचन के दास।।

349. जब निकलेंगे भेड़िए, छोड़ शहर की माँद।
खून रँगेगी चाँदनी, आँसू–आँसू चाँद।।

350. जीवन–कागज, लेखनी, एक–एक विश्वास।
लिखती विधवा चाँदनी, आँसू का इतिहास।।

351. पढ़ा रुक्मिणी ने कभी, मोहन का उर–धाम।
लिखा शरद की चाँदनी, में राधा का नाम।।

352. यौवन भागा, दे गया, जरा जीर्ण सौगात।
चार दिवस की चाँदनी, मीलों लम्बी रात।।

353. कुछ सपने टूटे हुए, जीवन का इतिहास।
सम्बन्धों की चाँदनी, देखी बहुत उदास।।

कविता-कवि

354. कुछ शिशु की उजली हँसी, कुछ यौवन की प्यास।
कविता, टूटे स्वप्न कुछ, कुछ मधुमय उल्लास।।

355. घुले पसीना अश्रु में, जो मसि हो तैयार।
भोजपत्र–उर पर लिखे, कविता माने प्यार।।

356. कविता बेटी दर्द की, जननी जिसकी पीर।
आँसू है भाई सगा, जन्मे अन्तर चीर।।

357. सूर्य–चन्द्र तारे छुपे, पावक हुआ हताश।
रक्त जलाकर दीप में, कवि ने किया प्रकाश।।

358. सृष्टा हूँ मैं, गा रहा, मधु–जीवन संगीत।
यह भ्रम ले कर रच रहा, हर कवि तेरे गीत।।

359. अपहृत हों सीता बनें, सन्त राक्षसी–ग्रास।
तब–तब लिखता आदि कवि, ऊर्जस्वित इतिहास।।

360. जब संस्कृति की द्रोपदी, हों कौड़ी की तीन।
लिखे लेखनी व्यास की, तब 'जय' काव्य नवीन।।

361. अपनी साँसों में बसे, जब मादक मकरन्द।
तब–तब कवि की चेतना, रचे 'गीत गोविन्द'।।

362. सिंहासन से जूझता, रहा कुटी के पास।
जीत न पाया कवि कभी, सोने का विश्वास।।

363. जागो–जागो गूँजती, कवि की मधुर पुकार।
मोह–निशा में सो रहा, जब सारा संसार।।

364. आदि अन्त को ढूँढते, गया समय के पार।
बाल्मीकि बैठा मिला, काल पुरुष के द्वार।।

365. चौंक उठे तूफान सब, हुईं आँधियाँ दंग।
जिस क्षण कवि के हाथ से, बजी समय की चंग।।

366. यह साँसों का कर्ज है, यह प्राणों की पीर।
'मेघदूत' बनकर ढली, कवि की पिघली पीर।।

367. तोड़ न पाए हम कभी, चिर अभाव का जाल।
ढोते अपनी पालकी, गर्व सहित भूपाल।।

आँसू

368. हमने आँसू से कहा, चल प्रियतम के गाँव।
पर पगला बैठा रहा, इन पलकों की छाँव।।

369. जब–जब अर्चन बन गया, प्राणों का अवसाद।
तब–तब साँसों को मिला, 'आँसू' बना 'प्रसाद'।।

370. तोड़ रही यमुना विकल, कूलों की जंजीर।
रोती होगी राधिका, बैठी इसके तीर।।

371. खौल रही है राम की, सरयू बनी अधीर।
टपका इसमें उर्मिला, के नयनों का नीर।।

372. सर, सरिता, सागर सभी, किए मनुज ने पार।
पार न कर पाया मगर, इन नयनों की धार।।

373. देखे हमने अश्रु के, जाने कितने रंग।
कुछ डोली के साथ थे, कुछ अर्थी के संग।।

374. गिरिजा, मन्दिर, मस्जिदें, लड़ते हैं वेभाव।
केवल आँसू में मिला, सर्वधर्म समभाव।।

375. झुका व्योम पिघले प्रबल, पर्वत हुए विनीत।
काँपा त्रिभुवन देखकर, माँ के अश्रु पुनीत।।

376. जब–जब झपटी स्वप्न पर, चक्रव्यूह की चील।
तब–तब चीखी उत्तरा, के आँसू की झील।।

377. कूड़े से रोटी चुनें, ये बचपन दिनरात।
फिर भी हुई न देखकर, आँसू की बरसात।।

378. कल तुमने सौगात में, आँसू दिए अमोल।
बने ग़ज़ल के शेर कुछ, कुछ गीतों के बोल।।

पगडण्डी

379. घट–घट भरीं उदासियाँ, पनघट–पनघट प्यास।
गुमसुम–गुमसुम खेत हैं, पगडण्डियाँ उदास।।

380. पगडण्डी भूली इसे, नहीं घाट को याद।
डूब मरे इस नदी में, कब शीरी–फरहाद।।

381. ढोला क्यों आया नहीं, भीगी दृग की कोर।
अपलक मारू देखती, पगडण्डी की ओर।।

382. मिटा चले पग चिह्न भी, कैसे करुणाधाम।
पूछे पगडण्डी कि अब, कब आओगे राम।।

383. राजपन्थ अनगिन मिले, मिला न पथ का भास।
कोई पगडण्डी मिले, पहुँचें तेरे पास।।

384. भूखी, नंगी, झोंपड़ी, या महलों के कक्ष।
सबने ही रौंदा सदा, पगडण्डी का वक्ष।।

385. इच्छाओं का कारवाँ, जाता है निज गेह।
गया रौंदकर कुचलकर, पगडण्डी की देह।।

386. मोहन की मुरली बजी, सिहरी सारी देह।
तब–तब यह राधा बनी, पगडण्डी सस्नेह।।

387. सबको गले लगा रही, सबसे मिले सहास।
यह मन्दिर को जा रही, वह मस्जिद के पास।।

388. खून पसीना खेत को, बच्चों को मैदान।
श्रमित पथिक को मिल गया, तुझसे जीवन दान।।

389. छोटे–छोटे स्वप्न हैं, पगडण्डी के पास।
पल में पुलक उछाह है, पल में बने उदास।।

नारी

390. आए उसके द्वार पर, चलकर खुद भगवान।
जिस घर में होता रहा, नारी का सम्मान।।

391. पत्नी, बेटी, बहन बन, पकड़ी नर की बाँह।
माँ बनकर देती रहीं, तू आँचल की छाँह।।

392. उजड़ गया उस द्वार का, सपनों वाला गाँव।
जहाँ न नारी ने धरे, कभी प्रीति के पाँव।।

393. नर का लोहा बन गया, कंचन परम पुनीत।
जब उसका मन छू गई, किसी नारि की प्रीत।।

394. भ्रूण परीक्षण ने किया, मन्द प्राण का तेज।
नारी तेरी देह को, अजगर हुआ दहेज।।

395. माचिस-तीली ने कहा, सुन मिट्टी के तेल।
चलो आज फिर खेल लें, हम दहेज का खेल।।

396. आग, चीख, आँसू, घुटन, कैरोसिन बदनाम।
घाव सफेदी ने किए, युवा हँसी के नाम।।

397. घर का कूड़ा थी वहाँ, यहाँ भाग्य की मन्द।
नारी तेरा भाग्य है, आँसू-डूबा छन्द।।

398. उठ माँ! अपने हाथ से, लिख जीवन-सौभाग्य।
भ्रूण-परीक्षण क्यों लिखे, मरण और दुर्भाग्य।।

399. नारी तेरे हाथ में, है जीवन की डोर।
तेरे आँचल में पले, सूरज वाली भोर।।

400. साँस-साँस में दर्द क्यों? रख जीवन का मूल।
नारी-आँचल में सदा, खिलें हँसी के फूल।।

401. काँपी बेटी कोख में, रोती है अविराम।
जाने किसने ले दिया, कल दहेज का नाम।।

402. तू ही अपनी कोख में, पलती है, दे त्राण।
भ्रूण–परीक्षण से न कर, तू खुद को निष्प्राण।।

दहेज

403. मेरी बेटी के लिए, चिता न कर तैयार।
इसमें तेरी भी सुता, जल जाएगी यार।।

404 यह दहेज का दैत्य है, इसका ओर न छोर।
मेरे मन में खोट है, तेरे मन में चोर।।

405. आँखें खोलो बावरे! देख लगाकर ध्यान।
मेरी बेटी यह नहीं, अपनी बेटी जान।।

406. मेरे दिए दहेज से, क्या होगा निस्तार।
अपने पौरुष पर करो, स्वयं भरोसा यार।।

407. कुल दीपक है पुत्र तो, बाती–बधू सम्हाल।
आँधी चली दहेज की, बुझा न उसे अकाल।।

408. यह दहेज–दानव हुआ, मानव भक्षी हाय।
तुझको भी खा जाएगा, मुझको रहा चबाय।।

409. दुल्हन मान दहेज तू, दुल्हन गुण की खान।
दुल्हन से परिवार है, जान इसे नादान।।

410. धरती से आहें उठें, अन्तरिक्ष से शाप।
इस समाज को खाएगा, यह दहेज का पाप।।

411. तन–मन की खुशियाँ गईं, गया अधर का हास।
बिटिया से कैसे कहूँ, क्यों है सुता उदास।।

412. लाखों बधुओं को दिया, इस दहेज ने मार।
तू भी भागीदार है, मैं भी भागीदार।।

जनसंख्या-नियंत्रण

413. घर के उपवन में खिलें, दो ही कोमल फूल।
महामंत्र यह राष्ट्र की, उन्नति के अनुकूल।।

414. हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, क्रिश्चियन, सिक्ख–समाज।
जनसंख्या रोकें सभी, दो सबको आवाज।।

415. देश बचाना तो सभी, काटो इसके पाश।
जनसंख्या की बाढ़ से, होगा महाविनाश।।

416. रो देगी उन्नति–प्रगति और हँसेगा नाश।
अगर फैलता ही गया, जनसंख्या का व्यास।।

417. हुए पचास करोड़ से, एक अरब हम लोग।
घर–आँगन में आ बसे, शोक–गरीबी–रोग।।

418. उगे राष्ट्र की भूमि पर, यद्यपि प्रश्न अनेक।
घातक है जनवृद्धि का, सबसे केवल एक।।

419. नसबन्दी महिला–पुरुष, या स्वीकार निरोध।
करो तभी होगा यहाँ, जनसंख्या का रोध।।

420. बच्चों की संख्या करें, सीमित सब सज्ञान।
तभी राष्ट्र की आपदा, होगी अन्तर्धान।।

421. जनसंख्या को रोक लें, प्राप्त विकल्प अनेक।
स्वेच्छा से अपनाइए, साधन उत्तम एक।।

422. जनसंख्या सीमित रहे, हो समाज खुशहाल।
जन–जन तक पहुँचे तभी, महा प्रगति की चाल।।

423. प्रगति पन्थ पर बढ़ रहा, अपना देश महान।
सीमित कर जनवृद्धि हम, पाएँगे उत्थान।।

संस्कृति

424. भरे पेट ने और का, भोजन धरा समेट।
विकृति से विकृत हुआ, तब संस्कृति का पेट।।

425. भोजन करना प्रकृति है, संस्कृति भोजन दान।
भूखे रह मानव जिए, यह आदर्श महान।।

426. संस्कृति जीवन लक्ष्य है, संस्कृति प्राण–प्रकाश।
संस्कृति से काटे मनुज, अन्ध तिमिर के पाश।।

427. सम्यक कृति, संस्कृति विमल, मूल्यों का अमरत्व।
देवों से ऊँचा उठा, नर पा संस्कृति–तत्व।।

428. जब मानव–पुरुषार्थ ने, छुए मूल्य के पाँव।
तब पहुँची नर–सभ्यता, बढ़ संस्कृति के गाँव।।

429. जब विकृत हो सभ्यता, हो संस्कृति बलहीन।
मूल्य बिकें बाजार में, तब कौड़ी के तीन।।

430. सत्य गया, सुन्दर गया, चला गया शिव–भान।
डूब रहा है देश की, संस्कृति का जलयान।।

431. गन्ध नहाई चेतना, प्रीति नहाए प्राण।
सत्य नहाई जिन्दगी, संस्कृति के सुप्रमाण।।

432. सत्य राम के साथ जब, खिले शक्ति–हनुमान।
युग–युग को गन्धित करे, संस्कृति का उद्यान।।

433. न्याय, नीति, सत्याचरण, सत्य, धर्म, उपकार।
विश्व प्रेम, इन्द्रिय–दमन, संस्कृति के आधार।।

434. कभी कृष्ण की बाँसुरी, कभी राम का बाण।
कभी सत्य हरिचन्द्र का, बनते संस्कृति–प्राण।।

सभ्यता

435. यह कैसी आँधी उठी, रहा न घट में नेह।
पानी सूखा आँख का, पथराई सब देह।।

436. अविश्वास के रत्न–धन, सन्देहों के लाल।
आज सभ्यता ने किया, मानव मालामाल।।

437. हँसी अधर की, आँख का, पानी हुआ विलुप्त।
भोर सभ्यता की हुई, तन जागा, मन सुप्त।।

438. उपवन–उपवन फूल हैं, नदियों में तेजाब।
आँसू पीती आँख है, पीते अधर शराब।।

439. बाबा की तस्वीर को, बेच दिया उस रोज।
लाऊँगा इस कक्ष को, न्यूड़पेंटिंग खोज।।

440. रूज, लिपस्टिक, साड़ियाँ, क्रिकेट खुला बाजार।
लँगड़ी घोड़ी सभ्यता, अन्धा मनुज सवार।।

441. अगर गिरा तो टूट कर, होंगे खण्ड हजार।
मनुज सभ्यता की चढ़ा, उच्च कुतुबमीनार।।

442. अधरों पर मोहक हँसी, भीतर कुटिल प्रहार।
दिया सभ्यता ने हमें, जन्म-दिवस उपहार।।

443. बाहर रंगों की चमक, भीतर चकनाचूर।
महानगर की सभ्यता, का है यह दस्तूर।।

444. भोर उबासी ले रही, थकी-थकी-सी शाम।
दौड़ लगाती दोपहर, सभ्य नगर के नाम।।

445. धुआँ, आँख, तृष्णा, हृदय, शोर जलाए कान।
तन-मन लाक्षागृह हुए, सभ्य हुआ इन्सान।।

446. एगकरी, फिश, सैण्डविच, मैगी, चाऊमीन।
डिनर आफ्टर ड्रिंक ही, लेते सभ्य नवीन।।

दूर खड़ी नजदीकियाँ

447. दूर खड़ी नजदीकियाँ, काँपे वट की छाँव।
कर्फ्यू वाले शहर-सा, सम्बन्धों का गाँव।।

448. गमले में है कैक्टस, कटते पीपल, चीड़।
तुलसीचौरे पर चढ़ी, छिपकलियों की भीड़।।

449. डिस्कोघर में नाचता, पीढ़ी का उल्लास।
संस्कृति पोंछे श्वेद को, हाँफ रहा इतिहास।।

450. बूढ़ी खाँसी हाँफती, युवा हँसी का दौर।
चेहरे अब परिवार के, हुए और ही और।।

451. चेहरे पर नकली हँसी, या घायल मुस्कान।
इतनी बड़ी दुकान के, ये फीके पकवान।।

452. दर्द, उदासी, यातना, ऊबे हुए समूह।
रिश्तों के घर हो गए, सम्बन्धों के ढूह।।

453. रेल सरीखी जिन्दगी, गुजर गई तत्काल।
सिर्फ दिखाई दे रहे, कुछ हिलते रूमाल।।

454. थके पंख, थकने लगा, मन–पाखी का गात।
मौसम चढ़ा मुँडेर पर, लिए गुलेलें हाथ।।

455. छाल, पात, फल–फूल का, देख–देख कर अन्त।
सोच रहा वट वृक्ष कब, आया, गया बसन्त।।

456. हँसता कर्फ्यू देखकर, रोए मन के रूख।
मंगल और रशीद के, घर पर रोई भूख।।

457. पहने है संन्यास का, यह जिन्दगी दुकूल।
आँचल से झरते मिले, नागफनी के फूल।।

यह अपना दुर्भाग्य

458. मैना बोली शुक सुनो, यह अपना दुर्भाग्य।
बन्दूकें लिखने लगीं, लोकतंत्र का भाग्य।।

459. सम्बन्धों की झील हो, या रिश्तों का ताल।
लहरें गिनने को रहे, कंकड़ लोग उछाल।।

460. मरुथल सागर में घँसा, सड़कें हुईं तड़ाग।
आँगन में हँसता खड़ा, नागफनी का बाग।।

461. कुण्ठाएँ संत्रास यह, फूटा हुआ नसीब।
ढोनी होंगी रे समय, कितनी और सलीब।।

462. अट्टहास चाँदी करे, श्रम की हालत पस्त।
मन्दिर में चलने लगी, छिपकलियों की गश्त।।

463. तिनके–तिनके जोड़ते रहे, बनाया नीड़।
साथ उड़ाकर ले गई, दुष्ट हवा की भीड़।।

464. दिन में चोरी हो गए, स्वप्न और संयोग।
चोरों का सरदार था, सूरज, कहते लोग।।

465. उड़ने को जब–जब चले, उजले श्वेत कपोत।
झपट पड़े हर ओर से, बन्दूकों के गोत।।

466. सुबह उदासी खारहा, ऊब खा रहा शाम।
भूख आदमी की बढ़ी, जाने कितनी राम।।

467. घर वाले डरने लगे, रहे पड़ोसी काँप।
अन्तरिक्ष जब से लिया, इस मानव ने नाप।।

468. मन्दिर, मस्जिद लड़ पड़े, जब लेकर तलवार।
छोटे बच्चों ने कहा, बहुत बुरे हो यार।।

जाने किसका गाँव

469. त्यौरी चढ़ी बबूल की, काँपे वट की छाँव।
अपना लगता है मगर, जाने किसका गाँव।।

470. चौपालें फुफकारतीं, गली–गली भयभीत।
बन्दूकों के गाँव में, प्रीति न रही अभीत।।

471. पनघट चढ़ी उदासियाँ, अगिहाने संत्रस्त।
फसल उगी बारूद की, अपनापन संयस्त।।

472. हँसने लगीं उदासियाँ, रोता है उल्लास।
अब तो मन के गाँव का, मुखिया है संत्रास।।

473. दूध–बताशा, चन्द्रमा, दादी और दुलार।
पागल मन बनने चला, फिर से राजकुमार।।

474. मौसम शातिर हो गया, हवा हुई मक्कार।
वदहवास फसलें खड़ीं, काँपें खेत जवार।

475. चौपालों पर हँस रहे, मुखिया और दलाल।
मुनिया के सपने हुए, असमय सभी हलाल।।

476. हँसी खो गई गाँव की, बिखरे मन के सूत।
या तो बन्दूकें हँसें, या मुखिया का पूत।।

477. चौपालें कहने लगीं, कथा घृणा की नित्य।
मुखिया के घर पर खड़ा, हाथ बाँधकर सत्य।।

478. शील सड़क का लूटता, ट्रैक्टर ओवर लोड।
पगडण्डी सहमी खड़ी, हाँफ रहा चकरोड।।

479. ढोल, मँजीरा, झाँझ, ढफ, औ' मतवाली चंग।
मस्ती का फागुन गया, गए ढाक के रंग।।

सुधियों का गाँव

480. कहीं दहकती धूप है, कहीं सुंहानी छाँव।
सरिता के तट पर बसा, यह सुधियों का गाँव।।

481. मन–मन्दिर में मूर्ति है, सिर्फ तुम्हारी एक।
नयन–कलश में अश्रु जल, भर करते अभिषेक।।

482. अन्दर हाहाकार है, बाहर केवल मौन।
साँझ ढले सूना ह्रदय, दीप जलाए कौन।।

483. पागल सुधियाँ आ गईं, फिर सरिता के तीर।
कुछ के नयनों में कमल, कुछ के नयनों नीर।।

484. मृदु भावों का अल्पना, सुधि का वन्दनवार।
एक विकलता ने कहा, अब तो आओ द्वार।।

485. सिर धुनकर सुधि ने कहा, अब तो आओ मीत।
तुम बिन विधवा हो गई, बने सुहागिन प्रीत।।

486. जलते दीपक ने कहा, मुझ से यह चुपचाप।
जलता रह, आ जाएँगे, प्रियतम अपने आप।।

487. क्या तुमको मालूम है, मनभावन मनमीत।
जीवन–सरिता तीर पर, खड़ी बाबली प्रीत।।

488. उमड़–घुमड़ घन गरज से, विरहिन हुई उदास।
तन सावन के पास है, मन भावन के पास।।

489. तुमसे मिलने को चले, घर से व्याकुल पाँव।
पीर बुला घर ले गई, कर आँचल की छाँव।।

490. प्रीति–विरहिणी राधिका, क्या सन्ध्या क्या भोर।
या तो ताके क्षितिज को, या मथुरा की ओर।।

हवा समय की

491. मौसम के बदलाव में, सूख गए सब पेड़।
हवा समय की क्या लगी, बच्चे हुए अधेड़।।

492. मन्दिर को अपने चरण, दिए जिस समय मोड़।
प्रभु बोले मैं तो उसे, आया कब का छोड़।।

493. लोकतंत्र की पालकी, लेकर चला जुनून।
अब हिंसा के हाथ में, न्याय और कानून।।

494. शान्ति, अहिंसा, प्रेम, सुख, भाग गए मुख मोड़।
राजनीति हिंसा, घृणा, कर आए गठजोड़।।

495. रामायण का लिख रहा, समय अजब अपभ्रंश।
रावण के दरबार में, बाल्मीकि का वंश।।

496. लोकतंत्र के देश का, यह कैसा दस्तूर।
टपकें हम आकाश से, लेता लपक खजूर।।

497. हँसा न रोया देखकर, युग का सन्त कबीर।
प्यास सिन्धु के उर बसी, मरुथल में है नीर।।

498. मेरे आँगन आ गई, रक्त नदी की धार।
उठूँ, सदी इक्कीसवीं, का कर लूँ सत्कार।।

499. फागुन में लू चल रही, जेठ झमाझम मेह।
सावन तपै अँगार–सी, अब मौसम की देह।।

500. झूठ–दशानन रथ चढ़ा, विरथ सत्य रघुवीर।
यह सदियों की वेदना, यह हर युग की पीर।।

501. मैंने उससे सौ कहीं, उससे सुनीं हजार।
इसी गणित में कट गए, जीवन के दिन चार।।

अपने-अपने जाल

502. तृप्ति प्यास के घर मिली, तुष्टि-कामना साथ।
मिले अपरिचित प्यार में, परिचय का मृदु हाथ।।

503. अजब प्रीति का गाँव है, यहाँ दर्द आबाद।
पर्वत से लड़ता मिला, सपनों का फरहाद।।

504. रूप-गन्ध का लोक है, तृप्ति प्यास का देश।
यहाँ तृप्ति कहती मिली, अनजाने सन्देश।।

505. बटमारों का देश यह, गोधूली का काल।
सुन 'यायावर' बावरे, रखना हृदय सँभाल।।

506. सबके काँधों पर लदा, सपनों का बेताल।
अपने-अपने पींजरे, अपने-अपने जाल।।

507. दृष्टि बँधी, मन बँध गया, प्राण हुए बेहाल।
अब तो केश समेट ले, रूपसि अपने जाल।।

508. तेरी आँखों में जलें, रूप-ज्योति के दीप।
सुन्दरि! तन का तम मिटे, आओ और समीप।।

509. ये तनाव, संत्रास ये, इच्छाएँ जंजाल।
काट सके तो काट दे, मानव, अपने जाल।।

510. अपने जाल समेट कर, देकर ठण्डी छाँव।
सूरज का धीबर चला, अब पश्चिम के गाँव।।

511. बँधे छटपटाते रहें, कब तक करुणाधाम!
अपना जाल समेट ले, अब तो मेरे राम।।

512. लम्बी घोर उदासियाँ, पूछ रहीं अनुमान।
किस घाटी में सो गया? सूरज लम्बी तान।।

513. ढोंगी मुस्कानें अधर, विज्ञापन दीवाल।
अन्तर पर हमने लिखा, संत्रासों का जाल।।

514. रसमय आलिंगन मिले, व्यंजन मधुर अघाय।
तन को भोजन मिल गया, भूखा मन क्या खाय।।

515. दिन में सपने देखते, रैनि काटते जाग।
दीपक गाते भोर में, शाम भैरवी राग।।

सपनों की कन्दील

516. मैं निरुपाय निहारता, लेकर टूटे बाण।
तुम्हें ख्याति के दैत्य ने, हरण कर लिया प्राण।।

517. जब–जब मुझसे खो गई, ढूँढ लिया हर बार।
अब तुम खुद से खो गई, मैं खोजूँ किस द्वार।।

518. पथ पर कुछ पग हम चले, थाम परस्पर बाँह।
तुम आगे बढ़ते गए, मैं बैठा तरु–छाँह।।

519. जाने कब लेकर उड़ी, अँधियारे की चील।
तेरे–मेरे बीच थी, सपनों की कन्दील।।

520. दर्द, प्रीति, विश्वास के, गन्ध भिगोए गात।
जीवन–सरिता में बहे, सम्मोहन के प्रात।।

521. यद्यपि जल–जल से मिला, बढ़ा सिन्धु का व्यास।
किन्तु न सागर की बुझी, और न सरि की प्यास।।

522. यमुना के तट पर कभी, मिला तृप्ति का धाम।
अब अधरों पर प्यास है, और किसी का नाम।।

523. रावण का अन्याय हो, या राघव की नीति।
अग्नि परीक्षा में सतत, रही जानकी–प्रीति।।

524. मुझे विदा दो कर शिथिल, मधुर नेह का पाश।
स्वप्न तुम्हारे हँस रहे, बाँहों में आकाश।।

525. एकाकीपन दूर था, हम तुम दोनों पास।
अब एकाकीपन करे, केवल मुझे उदास।।

526. माया है, भ्रम है जगत्, जीवन है जंजाल।
यह असत्य लगता रहा, पाकर प्रेम–प्रबाल।।

यह जनतंत्र उदास

527. जब तनतंत्र गुलाम हो, हो मनतंत्र निराश।
क्यों न भला जनतंत्र तब, होगा परम हताश।।

528. चारा, चीनी, यूरिया, बैंक, हवाला–धाम।
लोभतंत्र रटता मिला, लोकतंत्र का नाम।।

529. अपने–अपने घोंसले, नीडतंत्र के नाम।
भीड़तंत्र हुंकारता, लोकतंत्र बदनाम।।

530. हँसता है, मैंतंत्र बस, रोता है हमतंत्र।
किरनतंत्र कैदी हुआ, है स्वतंत्र तमतंत्र।।

531. चाबी बन हावी हुआ, सपनों पर धनतंत्र।
फाइल ने घायल किया, यह पूरा जनतंत्र।।

532. हाँफ रहा मध्याह्न के, कूकर-सा गणतंत्र।
बेवस जनता देखती, कुर्सी का रणतंत्र।।

533. आपाधापी गढ़ रहीं, रेलम-पेला तंत्र।
नायक खलनायक बने, अजब झमेला तंत्र।।

534. गली-गली हिंसा फिरे, होकर पूर्ण स्वतंत्र।
बन्दर बापू के गढ़ें, रोज झूठ का तंत्र।।

535. मूँछों-मूँछों में हँसें, पुलक विदेशी तंत्र।
ठेके पर लाने चले, यहाँ स्वदेशी तंत्र।।

536. ग्रहण लगा सुख चैन को, जन-जन है बेचैन।
झील बड़ी दुखतंत्र की, डूबे सबके नैन।।

537. मानव के उर में जगा, निर्मम जंगलतंत्र।
हँसने लगीं उदासियाँ, सोया मंगलतंत्र।।

साहित्यिक प्रदूषण

538. कौए बोलें या हँसें, लक्ष्मी वाहन-वंश।
हंस कहें चल हंसिनी, कवि-सम्मेलन मंच।।

539. भाग गई शालीनता, कविता रही न रंच।
'यायावर' देखो यहीं, कवि-सम्मेलन मंच।।

540. कवि-सम्मेलन देखकर, रोया सन्त कबीर।
महँगे बिकते चुटकुले, सस्ती मन की पीर।।

541. देख बन्धु! आलोचना, का यह सच्चा मान।
तू मुझको कह श्रेष्ठतम, मैं कह रहा महान।।

542. कथा–जगत् में अब कहाँ, है होरी का दर्द।
शेष रहे चितकोबरे, या फ्रीलांसर मर्द।।

543. कुछ आँसू हमसे मिले, रोए बुक्का फाड़।
कवि तुम हमको भूलकर, गढ़ते रहे पहाड़।।

544. काफी घर में बैठकर, कवि झाड़े तकरीर।
कौन सुने अब क्रौंच के, व्याकुल मन की पीर।।

545. सूची में कैसे नहीं, हम आए इस बार।
पुरस्कार लेकर उड़ा, धूर्त मंगलाचार।।

546. दम्भ, द्वेष, ईर्ष्या फिरें, यहाँ, वहाँ सिर तान।
जानें कब इस गाँव में, आएँगे रसखान।।

547. मेघदूत का स्वर नहीं, कहीं न घन आनन्द।
अपनी–अपनी ढपलियाँ, अपने–अपने छन्द।।

548. शहरों की इस भीड़ में, सन्नाटे का शोर।
कवि कैसे लाए भला, यहाँ कलरवी भोर।।

शहीद-तर्पण

549. जन्मभूमि जब–जब करे, वीर तुम्हारी याद।
गढ़े तुम्हारी चेतना, प्राणों का फौलाद।।

550. शीश दिया पर रख लिया, मातृभूमि का ताज।
तुमने माँ के दूध की, रखी वीरवर लाज।।

551. गर्वोन्नत तुम से सदा, माँ का उन्नत भाल।
लज्जित होता है तुम्हें, भेज चुनौती काल।।

552. टाँक दिया निज रक्त से, तुमने नव इतिहास।
चट्टानें रोने लगीं, पर्वत हुए उदास।।

553. तुम करुणा के देवता, तुम हिमगिरि के दूत।
सूरज ने झुक कर कहा; रणबाँकुरे सपूत।।

554. पवन प्रचारित कर रहा, तेरा दिव्य चरित्र।
नाम तुम्हारा ले हुए, सारे तीर्थ पवित्र।।

555. धरती ने आशीष दी, मंगलमय दिल खोल।
क्षितिज वक्ष ने टाँक लीं, तेरी कीर्ति अमोल।।

556. जिए मोह सब छोड़कर, कर अन्तर दो खण्ड।
रक्त स्नान करते रहे, दो प्रचण्ड भुज दण्ड।।

557. तुम उपवन, तुम वृक्ष हो, डाल, फूल, फल, पात।
तुम्हीं राष्ट्र उद्यान के, माली हो विख्यात।।

558. चन्दनगन्धी हो गई, आज हवा स्वच्छन्द।
मिला शहीदों का इसे, अमर कीर्ति मकरन्द।।

559. भाषा बौनी हो गई, शब्द अर्थ से हीन।
श्रद्धांजलि कैसे तुम्हें, दे अवतार नवीन।।

560. स्वागत में बिखरा दिया, भाव–पुष्प–मकरन्द।
पीड़ा–पीड़ा चेतना, आँसू डूबे छन्द।।

561. कुछ श्रद्धा के पुष्प कुछ, आँसू डूबे छन्द।
लाए हम सम्मान को, मान पुष्प की गन्ध।।

562. आसन से उठ इन्द्र ने, किया तुम्हारा मान।
फूल बिखेरें देवता, रण बाँकुरे महान।।

563. हवा उड़ाकर ले चलीं, शौर्य धैर्य अवदात।
कीर्ति शहीदों की हुई, अमर विश्व विख्यात।।

अर्थी चढ़ा गुलाब

564. दूध बिका सस्ता यहाँ, मँहगी हुई शराब।
मूरत पर गूलर चढ़ा, अर्थी चढ़ा गुलाब।।

565. रेशा-रेशा हो गई, तन-मन की जागीर।
अपनों ने इतना धुना, सपने हुए फकीर।।

566. वे वरदानी हाथ थे, लिए हुए तलवार।
पहले दीं आशीष फिर, किया पीठ पर वार।।

567. हमने कहा कि देवता! दो चिन्मय वरदान।
तत्क्षण मूरत ने किया, तन-मन लहूलुहान।।

568. मन की मछली मर रही, अब होकर बेहाल।
भरा हुआ तेजाब से, यह रिश्तों का ताल।।

569. जाने किस पथ खो गया, अपनेपन का प्यार।
धन के दल-दल में फँसा, रिश्तों का संसार।।

570. मरुथल की जलती रही, प्यास बनी कन्दील।
अपनी भीषण प्यास अब, किसे दिखाए झील।।

571. ज्ञान चिता–सा जल उठा, जली प्रेम की पाँख।
इतनी ज्यादा रोशनी, कैसे झेले आँख।।

572. सन्तोषी मरुथल मिले, प्यासे सागर–ताल।
मन–नचिकेता को मिले, उलझे हुए सवाल।।

573. चेहरे पर चेहरा लगा, उस पर चेहरे चार।
भौंचक 'यायावर' खड़ा, कहाँ फँस गया यार।।

574. अग्निकाण्ड में स्वार्थ के, जला हृदय–संगीत।
मोहन की मुरली मधुर, और राधा की प्रीत।।

हँसता रहा कुबेर

575. हम घर फूँक कबीर की, तरह लगाते टेर।
सोने के रथ पर चढ़ा, हँसता रहा कुबेर।।

576. दिशा–दिशा में गूँजता, है तम का संगीत।
कौन लिखे इस शोर में, अब प्रकाश की जीत।।

577. मैं अभिमन्यु समान ही, मरा बन गया ढूह।
वे अपनों के हाथ थे, रचा जिन्होंने व्यूह।।

578. अपनेपन के पाँव में, चुभते विष के डंक।
रोती हैं लाचारियाँ, हँसता है आतंक।।

579. दुष्ट दुशासन हँस रहा, फैलाकर संत्रास।
टुकड़ा–टुकड़ा हो रहा, कृष्णा का विश्वास।।

580. बाहर का घनघोर तम, गया किरण से हार।
भीतर के तम को करे, कौन यहाँ मिस्मार।।

581. छाया वाले वट कहाँ? यहाँ न पीपल–छाँव।
पहुँच गया जनतंत्र अब, षडयंत्रों के गाँव।।

582. जीवन लेगा पाँव को, मृत्यु–पंथ पर मोड़।
जिस दिन मेरे दर्द तू, मुझे जाएगा छोड़।।

583. खोई शीतलता कहीं, खोए रंग–सुगन्ध।
जले समय की आग में, सपनों के अनुबन्ध।।

584. ज्योति पुरुष! हे रश्मि धनु! तू तो बड़ा सचेत।
फिर क्यों जग में सर्वदा, जीते तम का प्रेत।।

585. मेरे दाएँ हाथ ने, छोड़ा जब से साथ।
तब से भौंचक–सा हुआ, मेरा वायाँ हाथ।।

आँसू का अनुवाद

586. जब–जब हल करने चला, उलझे हुए सवाल।
तब–तब मेरे अहम को, डाँट उठा दिक्काल।।

587. किसी लहर ने वक्ष पर, चुम्बन लिखा अधीर।
पागल मन अब तक खड़ा, उस सरिता के तीर।।

588. जहाँ गूँजते थे कभी, अपनेपन के बोल।
घूम रहे उस गाँव में, बन्दूकों के टोल।।

589. कुण्ठाओं के कुण्ड में, सुलग रहा संत्रास।
खोल रहा वातावरण, भुनते हैं अहसास।।

590. शर–शैया पर भीष्म हैं, पिए व्यथा का पेय।
प्रश्नचिह्न बनकर खड़ा, रिश्तों का कौन्तेय।।

591. उपवन का पीपल कटा, नागफनी मुँहजोर।
गला दबाकर चहक का, हँसता पागल शोर।।

592. कितने रंगों से बना, यह जग मायाधाम।
संशय, छल, सन्देह, भ्रम, तेरे कितने नाम।।

593. चलता अपने गाँव में, नफरत का कानून।
हँसती सिर्फ उदासियाँ, लड़ते रोज जुनून।।

594. शूकर चौके में घुसे, आँगन में घड़ियाल।
बैठक में वृक, घर हुआ, अभयारण्य विशाल।।

595. दीमक चाटी पुस्तकें, जंग लगी जंजीर।
आज श्राद्ध, धो–पोंछ लूँ, बाबा की तस्वीर।।

596. मन के दफ्तर में रहा, सदा दर्द आबाद।
हम बैठे करते रहे, 'आँसू का अनुवाद'।।

सूर्य

597. ताप, गन्ध, मधु बाँटने, जीवन को अविराम।
सूरज तुम भी तप रहे, तपे तुम्हारे राम।।

598. जिनके सपने ढो रहे, अँधियारे का भार।
सूरज! तेरी किरन पर, उनका भी अधिकार।।

599. सूर, सूर्य, सप्ताश्व हो, विवस्वान, आदित्य।
चित्रभानु ग्रहपति तुम्हें, मित्र कहे साहित्य।।

600. सहस्रांशु, हरिदश्व है, दिनकर, मिहिर महान।
दिनपति! तू है आर्यमा, दे प्रकाश–वरदान।।

601. द्वादशात्मा, अहस्कर, अंशुमालि, भास्वान।
भास्कर, तापन, तपन हो, पूर्वज सूर्य महान।।

602. गगन पन्थ पर बढ़ रहे, तपा-तपा कर प्रान।
कोटि नमन-पाथेय लो, प्रभापुत्र अम्लान।।

603. निठुर जिन्दगी ले गई, हमसे सब सुख छीन।
पर सपनों के सूर्य की, प्रभा न हुई मलीन।।

604. चला, तपा, फिर-फिर चला, तपा रहा अविराम।
मधु-ऋत दाता सूर्य का, जीवन छन्द ललाम।।

605. उतरो मेरे प्राण में, दो पावन उत्ताप।
अहंकार-सम्पाति के, पंख जलें चुपचाप।।

606. अरुण सारथी, किरण रथ, गगन-पन्थ अविराम।
ताप सखा, गति प्रेयसी, सूर्य सदा जितकाम।।

607. अर्क, विभाकर, बन्धु, रवि, दिनकर, भानु, प्रचण्ड।
हंस, अरुण, पूषा, तरणि, उष्म, रश्मि, मार्तण्ड।।

जन्मभूमि

608. श्रद्धा लेकर मन गया, मातृ भूमि के द्वार।
चरणों में बैठा मिला, स्वर्ग वहाँ हर बार।।

609. सुर, नर, किन्नर, नाग, मुनि, प्रेत, पितर, गन्धर्व।
तेरे आँचल के तले, पलते बढ़ते सर्व।।

610. फूल-मूल ये अन्न धन, ओषधि रत्न प्रभूत।
जन्मभूमि जननी हमें, देती दान अकूत।।

611. भूमि, धरित्री, वसुमती, क्षिति, धरणी सुखधाम।
वसुन्धरा, ज्या, काश्यपी, क्षमा तुम्हारे नाम।।

612. क्षोणी, भू, वसुधा मही, अचला, रसा, ललाम।
स्थिरा, अनन्ता, मेदिनी, जन्मभूमि सुखधाम।।

613. निर्धन–धनी, तपी–गृही, रंक–महीप महान।
माँ! तेरी रज से मिला, सबको जीवन दान।।

614. झीलें, सरिता, सिन्धु, सर, मीठे जल के कूप।
हँसें वक्ष पर गिरि–शिखर, गहरी घाटी–स्तूप।।

615. सत्य, धर्म, व्रत, त्याग,ऋत, नीति, न्याय, शुभ ज्ञान।
धारक ये तेरे जननि! मानव शील महान।।

616. रजत, स्वर्ण, धन, अग्नि, जल, खनिज, विविध आकार।
जन्मभूमि! देकर हमें, तू भरती भण्डार।।

617. जब–जब अपनी आँख के, सपने हुए किशोर।
मातृभूमि देती हमें, एक सुहानी भोर।।

618. दिव्य दुग्ध, मधु–रस हमें, दे जीवन–पीयूष।
काल निशा हर, मात भू, देती नव प्रत्यूष।।

619. प्रेम दिवानी राधिका, रटती पल–पल नाम।
जिसके आँसू से हुआ, पावन ब्रज का धाम।।

620. अतिथि देव के हित यहाँ, चीरें अपना बाल।
सत्य हथेली पर लिए, बिक जाते भूपाल।।

621. छू हाथों को सिन्धु पर, तैर गए पाषाण।
विष पीकर जग का करें, आशुतोष कल्याण।।

यह बेसुर बेताल

622. बहुत सिखाया पर रही, यह बेसुर बेताल।
नहीं जिन्दगी पा सकी, सुर, तुक, लय औ' ताल।।

623. अँधियारे के वंशधर, जपते जिनका नाम।
सूरज भी करने लगा, झुककर उन्हें प्रणाम।।

624. चलने को कसकर कमर, सिर्फ बढ़ाया पाँव।
चरणों में आकर झुका, मंजिल वाला गाँव।।

625. मूल्य, शिष्टता, सभ्यता, निष्ठा, शुभ शालीन।
यंत्रों के बाजार में, सब कौड़ी के तीन।।

626. तम ने घायल कर दिए, अपने दोनों पाँव।
जब सूरज को ढूँढने, चले ज्योति के गाँव।।

627. यह भारत की भारती, कैसे रहे स्वतंत्र।
पढ़े विश्व–बाजार अब, बिको–बिको का मंत्र।।

628. पीठ फेर सूरज चला, छोड़ धरा पर रात।
जलना होगा दीप को, जब तक होगा प्रात।।

629. लोकतंत्र के गाँव के, अजब निराले ठाठ।
शिक्षा मन्त्री ने पढ़ा, सोलह दूनी आठ।।

630. जब–जब तम के घर हुआ, उत्सव कभी महान।
सूरज करता आरती, शशि गाए जयगान।।

631. मन का मोती लुट गया, खाली–खाली सीप।
कैसा अन्धड़ चल पड़ा, बुझे नेह के दीप।।

632. हटे गरीबी देश से, लगा गूँजने मंत्र।
राजपन्थ से झोपड़ी, हटा रहा है तंत्र।।

जनसंख्या-विस्फोट

633. भीषण युद्ध कभी नहीं, ना अणुबम की चोट।
मारेगा इस देश को, जनसंख्या–विस्फोट।।

634. चिन्ताएँ सिर पर चढ़ीं, सपने हुए उजाड़।
चिढ़ा रही मुँह प्रगति का, जनसंख्या की बाढ़।।

635. अब भी अगर न दे सके, जनसंख्या पर ध्यान।
डूब जाएगा देश की, उन्नति का जलयान।।

636. अपनी संस्कृति के पढ़ो, शब्दहीन उपदेश।
दो सन्तति हों दे गए, राम हमें सन्देश।।

637. भूख, बेबसी, यातना, हँसते हैं समवेत।
ले अँधियारा घूमते, जनसंख्या के प्रेत।।

638. धुआँ, धुन्ध, अँधियार, भ्रम, पीड़ा, हाहाकार।
देगी जनसंख्या हमें, कुछ ऐसे उपहार।।

639. आँगन में आकर जुड़े, आँसू औ' दुर्भाग्य।
जनसंख्या लिखने चली, जब भारत का भाग्य।।

640. जनसंख्या–विस्फोट में, हमीं विश्व–सरताज।
बढ़ते–बढ़ते हो गए, सौ करोड़ हम आज।।

641. भूमि–भवन, धन, अन्न–जल, होंगे सबसे दीन।
जनसंख्या बढ़ती रही, यदि यों सीमाहीन।।

642. दस के सौ होते गए, सौ के कई हजार।
नभ में बसने को रहें, तो फिर हम तैयार।।

643. मुख को दाने, हाथ को, नहीं मिलेगा काम।
इस अनियंत्रित बाढ़ को, थाम सके तो थाम।।

महापुरुष

644. दुख केवल अपने लिए, सुख बाँटें दिनरात।
कालजयी बन कर जिए, महापुरुष अवदात।।

645. औरों के दुख लिख लिए, जिसने अपने नाम।
उसी पुरुष को मिल गया, महापुरुष का नाम।।

646. करुणा, ममता, त्याग, नय, विश्व प्रेम उपकार।
धैर्य, धर्म बैठे मिले, महापुरुष के द्वार।।

647. धन्य भरत भू पावनी, पुण्य धरा अभिराम।
हर कण पर अंकित किसी, महापुरुष का नाम।।

648. पर्वत दृढ़ता माँगते, सिन्धु हृदय–विस्तार।
महापुरुष से भूमि ने, माँगी क्षमा उदार।।

649. चुप होकर सुनता रहा, वाणी को दिक्काल।
चरण बढ़े तो झुक गया, विन्ध्याचल का भाल।।

650. अश्रु पोंछकर काल के, अधरों पर मुस्कान।
जिसने रख दी बन गया, महापुरुष द्युतिमान।।

651. कभी क्रूस पर टँग गया, विष पी गया सहास।
महापुरुष ने सृष्टि–हित, रचा करुण इतिहास।।

652. रथ पर चढ़े असत्य ने, भरी क्रुद्ध हुंकार।
महापुरुष ने विरथ ही, दिया उसे ललकार।।

653. कंस क्रूरता का करे, जब–जब अत्याचार।
महापुरुष आता तभी, बनकर तारनहार।।

654. कवि, कविता, ऋषिगण, ऋचा, रचते दिव्य वितान।
महापुरुष जब–जब लिखे, अखिल लोक कल्याण।।

भारत माता

655. धोकर जिसके पद विमल, सागर हुआ निहाल।
नभचुम्बी हिमश्रृंग उस, भारत माँ का भाल।।

656. अमरनाथ उत्तर वसें, शिव करुणा के धाम।
दक्षिण में रामेश्वरम्, आशुतोष जितकाम।।

657. पूरब पुरी विराजती, जगन्नाथ का धाम।
पश्चिम शोभित द्वारिका,जहँ मुरलीधर श्याम।।

658. पावन माटी खा हँसे, जग का पालनहार।
यहाँ मुग्ध मन देवता, लेते हैं अवतार।।

659. बढ़ा मातृ भू की तरफ, अगर विदेशी पाश।
तलवारों ने छा लिया, भारत का आकाश।।

660. अगर देश में आ गया, संकट का भूचाल।
दीवारों में चिन गए, भारत माँ के लाल।।

661. रणभेरी जब-जब बजे, जगे युद्ध-संगीत।
कण-कण माटी का लिखे, बलिदानों के गीत।।

662. बेदर्दी कान्हा भरे, बंशी में आलाप।
रिसता राधा का हृदय, बूँद-बूँद चुपचाप।।

663. पिघले जब प्रणयी हृदय, लिए प्रेम का ताप।
ताजमहल तब स्वप्न का, बन जाता चुपचाप।।

664. अनुज भरत-लक्ष्मण यहाँ, रचते त्याग-वितान।
यहाँ जानकी त्याग का, लिखतीं जब जयगान।।

भूकम्प-त्रासदी (कच्छ भुज- 26.1.2001)

665. कैसी लाया रात यह, नई सदी का प्रात।
तूफानी तम से विवश, गुजरा है गुजरात।।

666. अँकुराई थी जिन्दगी, लेकर नव उल्लास।
कुचल दिया भूकम्प ने, पाषाणों से हास।।

667. नूपुर, मृदुमंजीर के, क्वणन भरे थे भौन।
फैल गया उस प्रान्त में, सन्नाटे का मौन।।

668. हतप्रभ सूनी आँख है, दुख से भरा दुकूल।
छीने निर्मम काल ने, करुण गोद के फूल।।

669. हँसी अधर की, गाल के, खिलते हुए गुलाब।
पलक झपकते ले गया, वह निर्मम सैलाब।।

670. आँख डाल दी काल की, आँखों में भरपूर।
खण्डहर में दब कर हुए, सपने चकनाचूर।।

671. नाच रहा जनतंत्र था, थिरक रहा था गात।
निठुर नियति ने कर दिया, तभी बज्र–आघात।।

672. अनगिन घर उजड़े, पुछा माँगों का सिन्दूर।
पालक, सृष्टा हो गए, कैसे इतने क्रूर।।

673. कला, सभ्यता, शिष्टता, संस्कृति का इतिहास।
मलबे में दम घुट मरा, गरबा का उल्लास।।

674. दोहन करके प्रकृति का, किया भयंकर पाप।
क्रुद्ध प्रकृति माँ ने दिया, यह भीषण अभिशाप।।

675. सरगम टूटी साँस की, बिखर गया स्वर–ताल।
जीवन के संगीत को, कुचल गया भूचाल।।

हर आँगन में आग

676. पाँव प्रीति के जल गए, झुलस गया अनुराग।
कौन सिरफिरा बो गया, हर आँगन में आग।।

677. बना गाँव ब्रह्माण्ड अब, भूमण्डल परिवार।
चिढ़ा रही मुँह प्रगति का, आँगन की दीवार।।

678. चीख रही किलकारियाँ, सहमी हुई सुगन्ध।
हवा बाँचने लग गई, बारूदी अनुबन्ध।।

679. जुगनू के साम्राज्य में, अँधियारे रणधीर।
लिखदी दोनों ने यहाँ, सूरज की तकदीर।।

680. मूल्य, न्याय, आदर्श, सच, प्रतिभा, कला नवीन।
बिकने को बाजार में, खड़े हुए बन दीन।।

681. धूर्त आग लिखने लगी, जब मेंहदी का भाग्य।
भोली साँसों को लगा, वह अपना दुर्भाग्य।।

682. कैसा जादू कर गया, नवयुग का विज्ञान।
हँसी अधर से आँख से, आँसू अन्तर्धान।।

683. कहीं पाँव है, सिर कहीं, कैसा है यह रोग।
महानगर में हो गए, टुकड़ा–टुकड़ा लोग।।

684. टूट गया मन से यहाँ, मन का प्रिय संवाद।
हम–तुम मिलकर कब हँसे, नहीं आ रहा याद।।

685. चिड़ियों का कलरव गया, गयी सुहानी भोर।
लाता सूरज हर सुबह, कान फोड़ता शोर।।

686. पनघट, घूँघट, लाज से, दबी हँसी का भार।
कहाँ खो गया शोर में, वह मधुमय संसार।।

हल्ला बोल

687. तेरे पापों की बही, लोग रहे हैं खोल।
वीर शिखंडी उठ जरा, इन पर हल्ला बोल।।

688. हल्ला बोलो दीप पर, अँधियारे के वीर।
खींचो तेगें म्यान से, लो जहरीले तीर।।

689. इस जुगनू के तोड़ दो, पंख करो बेहाल।
अपने तम के राज्य को, कर देगा पामाल।।

690. देख हिमाकत लो जरा, कहे बाज को बाज।
इस दर्पण के तोड़ दो, अंजर–पंजर आज।।

691. जनता के माथे लिखा, हमने यह विधि लेख।
जो बुलवाऊँ बोल तू, जो दिखलाऊँ देख।।

692. यह सोने का पींजरा, बैठो यहाँ अभीत।
अब तुम गाओ बुलबुलो, केवल मेरे गीत।।

693. सूरज से जुगनू कहे, तेरी हस्ती कौन।
जो बोलूँ सो बोल तू, या फिर साधो मौन।।

694. फटा हुआ तो क्या हुआ, यही हमारा ढोल।
अगर न पीटा तो अभी, देंगे हल्ला बोल।।

695. अँधियारे के देश में, हँसता दुष्ट दुरन्त।
इस प्रकाश पर बोल दो, हल्ला अभी तुरन्त।।

696. खिलता सौरभ बाँटता, इतनी इसकी ताब।
हल्ला बोलो कंटको, यह है दुष्ट गुलाब।।

697. हल्ला बोलूँगा अभी, दूँगा इसको मार।
अगर न इस नभ ने किया, मेरा जय-जयकार।।

गंगा

698. गं गं गच्छति गंगिके, पीडित जन का त्राण।
तेरे मृदु वात्सल्य से, पोषित सबके प्राण।।

699. माँ! तेरे तट पर बसा, शृंगवेरपुर ठीक।
गुह निषाद ने खींच दी, सखा-धर्म की लीक।।

700. करुणा लिए दिलीप की, रघु का प्रबल प्रताप।
सरयू तुझसे आ मिली, खोकर अपना आप।।

701. सहोदरा सरयू लिए, रामकथा का तंत्र।
मिली, तभी से तू रटे, 'राम-राम' का मंत्र।।

702. माँ! तुझ को धर शीश पर, शंकर हुए महान।
नीलकण्ठ को विष किया, तूने सुधा समान।।

703. करती भारत भूमि को, तू उर्वरता दान।
तेरे तट पर गूँजते, संस्कृति के जयगान।।

704. लहर-लहर में हर बसें, बूँद-बूँद हरि-वास।
धारा के सँग सँग चलें, भक्ति, प्रीति, इतिहास।।

705. पातक-पोतक डंकिनी, तेरी पावन धार।
खोल पापियों को रही, तुम्ही स्वर्ग का द्वार।।

706. तू निष्ठा, तू आस्था, विनय, प्रीति, विश्वास।
भारत माँ के हृदय का, तू जीवित इतिहास।।

707. काट रही तू सृष्टि में, है जम की जंजीर।
तरस रहे हैं देवता, पीने तेरा नीर।।

708. देवलोक मन्दाकिनी, भोगवती पाताल।
धरती पर भागीरथी, रूप धरे चिरकाल।।

709. सानुज, सप्रिया राम ने, किया तुझे प्रणिपात।
गंगा बोली, जानकी! 'अचल रहे अहिवात'।।

केरल

710. केरल में कदली मिली, मुझसे सहित सनेह।
नारिकेल का स्वागतम्, सुनकर हुआ विदेह।।

711. लहरों की बाँहें उठा, मिलने दौड़ा, सिन्धु।
बोला, उर शीतल हुआ, आ 'यायावर' बन्धु।।

712. पद्मनाभ प्रभु की कृपा, फैल रही चहुँ ओर।
अन्धकार मन का मिटे, जागे उजली भोर।।

713. हरियाली हँसती मिली, गाता नव उल्लास।
भोलेपन ने ही लिखा, मानव का इतिहास।।

714. सीधे-सीधे नारि-नर, सुन्दर कला प्रवीन।
हरियाली नाचे, हवा गाती राग नवीन।।

715. परशुराम प्रभु की धरा, सोती पाँव पसार।
रक्षा में तत्पर सदा, तीक्ष्ण परशु की धार।।

716. आँख-आँख में स्वागतम्, साँस-साँस उल्लास।
प्राण-प्राण में दीप्ति है, पग-पग में विश्वास।।

717. तट का आलिंगन करे, लहरों का मृदु प्यार।
सागर हँसकर भूमि को, देता मधुर दुलार।।

718. हँसती शुभ्र पहाड़ियाँ, हरियाली धर शीश।
फलित हुआ मानो यहाँ, शिव का शुभ आशीष।।

719. यहाँ देव मण्डप लगे, हरा भरा अभिराम।
किरनें यक्ष किशोरियाँ, नाचें सुबहो-शाम।।

720. मंगल-सा मन में बसा, वह सुगन्ध संसार।
माँ का पाद प्रदेश वह, वन्दनीय सौ बार।।

अनुसंधान के प्रकाशन

1. आँसुओं का दर्द (मुक्तक) चेतन दुबे 'अनिल'
2. आरती के दीप (बाल गीत) डॉ. दिनेश यादव
3. छविगृह (ग़ज़लें) आसी पुरनवी
4. पत्नी चालीसा (व्यंग्य) ताराचन्द 'तन्हा'
5. गाते गाते पाओ ज्ञान (बालगीत) डॉ. मुरारी लाल सारस्वत
6. पंचतंत्र पद्य पारिजात (पद्यान्तर) डॉ. मुरारी लाल सारस्वत
7. लोक वातायन (निबन्ध) कैलाश त्रिपाठी
8. आँसू का अनुवाद (दोहे) डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'
9. सद्भवना मंगल (विवाह स्मारिका)
10. समीक्षांकुर (समीक्षा) सम्पादिका – सद्भावना
11. पत्रिकाएँ और हमारा समाज, सम्पादक – कैलाश त्रिपाठी
12. मानस आचमनीयम् (निबन्ध) कैलाश त्रिपाठी
13. सत्संग के स्वर (निबन्ध) कैलाश त्रिपाठी
14. कैलाश त्रिपाठी की चिन्तन मुद्राएँ (समीक्षा)
    सम्पदक डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

कवि-परिचय
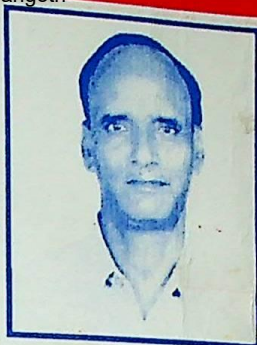
जन्मतिथि : वास्तविक (27 दिसम्बर, 1948)
प्रमाणपत्रानुसार, 5 जुलाई, 1949

जन्म स्थान : ग्राम तिलोकपुर, जन० फीरोजाबाद, (उ. प्र.)

पिता : लोक कवि, लोक गायक एवं स्वतंत्रता सेनानी, पं. गया प्रसाद शर्मा

शिक्षा : एम.ए., पी.एच.डी, डी.लिट्.

व्यवसाय : एस.आर.के. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फीरोजाबाद के शोध एवं स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में रीडर।

शोध निर्देशन : 32 शोधार्थियों ने निर्देशन में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की, 3 शोधार्थी शोधरत, 38 लघुशोधार्थियों ने लघु शोध तैयार किए।

प्रकाशित कृतियाँ :
1. मन पलाशवन और दहकती संध्या (गीत व ग़ज़ल, 1989)
2. गलियारे गन्ध के (प्रणयगीत, 1998)
3. पाँखुरी-पाँखुरी (मुक्तक-2000)
4. सीप में समन्दर (ग़ज़ल संग्रह-2000)
5. समकालीन हिन्दी गीति काव्य-संवेदना और शिल्प (1970-1995) (शोधग्रन्थ 2006)
6. मेले में यायावर (गीत-2007)

लेखन सहभागी कृतियाँ : बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, ग़ज़लः दुष्यन्त के बाद, सर्वश्रेष्ठ हिन्दी मुक्तक, साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़लें, हिन्दी के मनमोहक गीत, गीतकाव्यानम्, हायकू 1999 तथा प्रसाद : नवमूल्यांकन जैसी ऐतिहासिक महत्त्व की 72 कृतियों में लेखन- सहभागिता।

सम्पादन : हिन्दी सुकवि सुधा, चिट्ठियाँ बोलती हैं, स्वतंत्रता सेनानी एवं राष्ट्रीय ढोला गायक पं. गयाप्रसाद शर्मा स्मृतिग्रन्थ तथा दिव्य दीक्षित : राजेश दीक्षित

विशेष : सम्पूर्ण देश की लगभग सभी स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में गीत, दोहा, ग़ज़ल, हाइकू, संस्मरण, शोधपत्र, कहानियाँ, लघु कथाएँ, व्यंग्य व बोध कथाएँ प्रकाशित। इण्टरनेट पर रचनाओं का प्रसारण, आकाशवाणी के आगरा, मथुरा, दिल्ली केन्द्रों से रचना-प्रसारण, विभिन्न संस्थाओं द्वारा गीतश्री, साहित्यवाचस्पति, साहित्य-शिरोमणि, गीत गन्धर्व, भारती सेवाभूषण, काव्य गौरव, काव्यश्री, समग्र लेखन पर कादम्बरी (जबलपुर)द्वारा स्व. रामेन्द्र तिवारी आदि सम्मान प्रदत्त, डॉ.बी.आर.ए.विश्वविद्यालय, आगरा तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, पानीपत में साहित्य पर दो लघु शोध प्रबन्ध सम्पन्न, राममनोहर लोहिया विश्वविद्यालय, फैजाबाद में पी.एच.डी. हेतु विषय स्वीकृत, 25 ग्रन्थ प्रकाशय।

सम्पर्क : 86, तिलक नगर, बाईपास रोड, फीरोजाबाद-283203

मोबाइल : 9219412159, 9412316779

ई-मेल : dr_yayawar@patra.com
dr_yayawar@yahoo.com